युग की आवाज़

सम्पादक

सत्य पाल 'आनन्द'

प्रकाशक

साहित्य संगम

लुधियाना

प्रकाशक :—
जीवन सिंह एम० ए०
लाहौर बुक शाप
घन्टा घर लुधियाना

मुद्रक:—
लाहौर आर्ट प्रेस
रामनगर सिवल लाईनज़
लुधियाना

विषय सूची

मेरी बात

संसार में आदि मानव कब आये—इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि जब आदि मानव का पहला बच्चा हुआ होगा तो उसकी माँ ने उसे सुलाने के लिए या उसका दिल बहलाने के लिए कोई कहानी अवश्य सुनाई होगी। यह नहीं कहा जा सकता कि उस कहानी का रूप रंग क्या था, परन्तु एक बात स्पष्ट है कि वह कहानी संसार की उत्पति से सम्बंधित थी। चाँद, सितारों, सूर्य, पहाड़ों, नदियों, वायु, पानी और समुन्द्र के विषय में थी। इसमें प्रकृति के वैचित्र्य का वर्णन था।

इससे हमें दो बातें मिलती हैं। एक तो यह कि कहानी इतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव स्वंय, और दूसरी यह कि सब से पुरानी कहानियाँ भी जीवन की उन वास्तविकताओं से सम्बन्धित थीं जो मानव की नग्न दृष्टि के समीप थीं। समय में परिवर्तन आया। मानव धरा के विस्तार पर फैलने लगा और जीवन का विकास होने लगा और साथ ही कहानी का रँग रूप भी बदलने लगा।

जब मानव को प्रकृति का सामना करना पड़ा; उसे सरदी, गरमी, वर्षा और तूफ़ान से रक्षार्थ झोंपड़ियां बनानी पड़ीं तो उसके ज्ञान में वृद्धि हुई। उसने सँसार का उद्देश्य जानना चाहा और उसका मस्तिष्क उलझकर रह गया। उसने प्रकृति के सुदृढ़ और शक्तिशाली तत्वों को देवता मानना और उनकी पूजा करनी आरम्भ कर दी। कहानी का रूप बदल गया। अब कहानी में अपने पूर्वजों की महानता, देवताओं की शक्ति और अज्ञात शक्ति द्वारा मानव

पर की हुई नृशंसता का वर्णन होने लगा। यह क्रम अत्यधिक बढ़ा और परिणाम यह हुआ कि हम आज भी उनके पद-चिह्न ग्रीक देवमालाओं और हिंदू देवमालाओं में देखते हैं।

यह देवमालायें हमारे प्राचीन साहित्य के स्तम्भ हैं।

यह तो रही पुरानी बात, यहां तो मुझे केवल कहानी के विषय में चर्चा करनी है। आजकल कहानी का हमारे साहित्य में बहुत महत्व है; इसका कारण शायद यह है कि मानव प्रत्येक वस्तु में लघुता और सौंदर्य देखने का अभिलाषी है। परम्परा है कि छोटी वस्तु सदा सुन्दर दिखाई देती है। किसी सुन्दर वस्तु का बड़ा रूप घिनौना दिखाई दे सकता है, किन्तु किसी कुरूप बड़ी वस्तु का छोटा रूप इतना बुरा नहीं लगेगा। कहानी के इसी महत्व के कारण हमें अपनी कहानी के विषय को इस प्रकार छेड़ना है जैसे हीरे की कलम से शीशे को काट छांट कर सुन्दर बनाया जाता है।

सब से पहली बात जो मैं कहना चाहता हूँ, वह बहुत विचित्र ढङ्ग की है—कुछ लोगों को शायद यह बुरी भी लगे, फिर भी बात क्योंकि अनिवार्य है—इसलिए इसकी चर्चा अवश्य होनी चाहिए। साहित्य की इस सरस धारा को हम कहानी के नाम से पुकारते हैं, परन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जाए तो गद्य के इस कहानी नाम वाले टुकड़े में 'कहानी' का अंश बहुत कम और न होने के बराबर है। इसलिए इसे कहानी कहना ऐसा ही अनुचित है जैसे पूरी रेल को केवल एक डिब्बा कह दिया जाए। हमारी आज की कहानी को साहित्य के बहुत से दूसरे अंशों ने मिलकर बनाया है। इसमें कथा, नाटक, उपन्यास, रिपोर्ताज़, सरस भावकुता और भावोद्वेग, सबने अपना अपना भाग डाला है। कहीं यह भाग नाटकीय चरमोत्कर्ष के रूप में उभरता है और कहीं उपन्यास की सी गम्भीरता और गति उत्पन्न होती है। कहीं व्यंगय

और रिपोर्ताज़ की सी सीधी सादी बातें होती हैं, तो कहीं काव्य की सी कोमलता एंव भावुकता! इसलिए इसका अपना एक अलग सुन्दर, और छोटा सा घर बन गया है। इस घर का अपना अलग द्वार है, अपना उद्यान है, और अपनी ही सुन्दरता है। इसे कहानी के पुराने और बेढंगे नाम के मापदण्ड से मापना बिलकुल अनुचित है।

यह स्पष्ट है हमारी आज की छोटी कहानी पूर्ण रूप से बाहर से आई है। इसने भारतवर्ष में आकर यहां के कुछ रीती-रिवाज अपनाये थे। ऐसा लगता था जैसे इंगलिश, फ्रैंच और रूसी रक्त से मिली जुली मेम ने भारतीय वेषभूषा धारण कर ली है। मैं यह काल १६२० से १६३५ तक गिनता हूँ। १६३५ के बाद से कहानी का विकास हुआ। यद्यपि इसके बाद भी इसमें कई ग़लत प्रवृतियाँ आईं, परन्तु फिर भी कहानी आगे बढ़ती रही और आखिर वह समय भी आ पहुँचा कि उसने एक नव-दम्पति की तरह अपना अलग घर बना लिया—एक ऐसा घर जिसके लिए material साहित्य के अन्य भागों ने दिया था। अब उसकी हालत एक नव-विवाहिता की तरह है! यही कारण है और इसलिये मैं कहता हूं कि इसका पुराना नाम इसे शोभा नहीं देता। वह बहुत बदल चुकी है। उसकी वेषभूषा, रहन-सहन, चाल-ढाल, मन और मस्तिष्क सभी में एक परिवर्तन आ गया है। इसलिये उसका कोई ऐसा अनुकूल नाम होना चाहिये जैसा कि उसका घर है।

हमारी आजकल की कहानी में 'कहानी' का केवल इतना ही अंश होता है कि चित्र के लिये कैनवस तैयार हो। जब इस कैनवस पर दूसरे रंग बिखर जाते हैं, तो कैनवस दब जाता और दिखाई नहीं देता।

इसके स्थान पर एक सुन्दर चित्र दिख ई देता हैं। यह चित्र जिसे हम Execution या Yarning कहते हैं, हमारी कहानी है। कैनवस तो उसकी प्रारम्भिक मुखाकृति है और किसी वस्तु की प्रारम्भिकता को उसकी चरमोत्कर्षता कह देना सर्वथा अनुचित है।

× × × × ×

प्रत्येक कलाकार अपनी रचनाओं की पृष्ठभूमि में रहने वाले विचारों को चेतन एंव अवचेतन अवस्था में एक क्रम में रखता जाता है। यह क्रम प्राय: कलाकार की आत्मानुभूति से आरम्भ होता है। यह अनुभूति कलाकार के अन्तर्जगत एंव बाह्यजगत से प्रभावित होती रहती है। इसलिए कलाकार के विचारों पर अन्तर्जगत एव बाह्यजगत का अत्यधिक प्रभाव रहता है। विचार बढ़ते बढ़ते एक श्रृंखला में बद्ध हो जाते हैं। इस श्रृंखला की कुछ कड़ियां तो सूत्र प्रबल होने के कारण व्यक्त हो जाती हैं और कुछ दबी दबी सी रह जाती हैं। जो कड़ियाँ उभरती हैं, अवकाश के क्षणों में कलाकार की लेखनी से निकलकर कागज़ पर बिखर जाती है। इन उभरी हुई कड़ियों की अभिव्यक्ति के साथ दबी हुयी कड़ियों का कुछ अंश भी व्यक्त हो जाता है। यदि यह श्रृंखला यथेष्ट रूप से प्रबल हो, भावोद्वेग अधिक हो और शब्द मिलें, तो विचारों की यह श्रृंखला क्रमपूर्वक और उसी प्रकार ही रचना में परिणत हो जाती है। रचनात्मक शक्ति की इस क्रिया को हम लोग कहते हैं कि हमने एक कविता कह ली एक कहानी लिख ली या एक लेख की रचना कर ली।

परन्तु सोचने की बात यह है कि रचनात्मक शक्ति की इस क्रिया को हम साहित्य में कौनसा स्थान देंगे ? क्या अपरोक्ष प्रणाली से रचित कहानी स्तर के उस शिखर पर पहुँचती है जिसे हम स्वस्थ, प्रगतिशील या अच्छा ही कह सकते हैं।

इन्सान का दिमाग़ मशीनी होते हुये भी मानवीय है। मशीनों पर बाह्य जगत के किया-कलापों का कोई प्रभाव नहीं होता, यदि बाहिर आंधी, तूफान—कुछ भी आ जाये, कारखाने में मशीनें उसी प्रकार चलती रहें गी—जैसे कि पहले चल रही थीं। परन्तु कलाकार का मस्तिष्क इन सभी बातों को स्वीकार करता है। वह अपने इर्द गिर्द के वातावरण से प्रभावित होता रहता है। इसलिए उसके मस्तिष्क के mechanism में हर घड़ी परिवर्तन होते रहते हैं। कभी कभी उसका भावजगत उपरोक्त क्रम की उपेक्षा भी कर देता है। कभी कभी चिन्तनशीलता की गहराई इस क्रम को अधिक प्रबलता एंव दृढ़ता प्रदान करती है। और कभी यूं भी होता है कि विचारों का सिफलापन किसी गंदे external stimulus से इतना प्रभावित होता है कि उपरोक्त श्रृङ्खला में एक गंदी कड़ी की वृद्धि हो जाती है। तब हम कहते है कि अमुक कहानी या कविता तो बहुत अच्छी है, पर अमुक 'उच्च' स्तर से गिरा हुआ है।

स्पष्ट यह हुआ कि रचना का मुलभाव तो उपरोक्त क्रम पर आधारित हैं, परन्तु उसकी स्तरात्मक उत्कर्षता के लिए कुछ अन्य बातें भी आवश्यक हैं।

ये बातें क्या हैं ? हम इनकी विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं करें गें। केवल इतना बताना है कि हमारा मस्तिष्क जो बाह्य-जगत के

प्रत्येक सूत्र से प्रभावित होता है और इन सूत्रों में से कई अमंगलकारी भी होते हैं जिनका चित्रण हमारे साहित्य और समाज के लिए हानिकारक भी हो सकता है। इस लिए हमें अपनी Instinctive habit को इस प्रकार बनाना होगा कि हमारा मस्तिष्क उन सूत्रों को स्वीकार ही न करे। यदि करे तो उन का चित्रण न करे और यदि करना हो तो इस प्रकार कि जैसे कोनीन की गोलियाँ पर शकर चढ़ा कर पेश की जाती है। यथार्थ-वाद का उद्देश्य यह नहीं कि हम जीवन की हर शुभ या अशुभ वास्तविकता को उसके नग्न रूप में प्रस्तुत करें। हमें अपने यथार्थवाद में थोड़ी सी नैतिकता, सौन्दर्य और भावरस का भी नियंत्रण रखना पड़ता है क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो यथार्थवाद के उद्देश्य की मृत्यु हो जाएगी और उसके स्थान पर वास्तववाद का जन्म होगा।

वास्तववादी चित्रण-प्रणाली में बहुत सी त्रुटियाँ हैं। इसके कारण जीवन की नकारात्मक परम्पराओं को उभरने का अवसर मिलता है और इसी के कारण form में matter की उपेक्षा करने की सम्भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं, जिनके आधार पर प्रतीकवाद और अभिव्यंजना का पालन पोषण होता है।

× × × × ×

यह पुस्तक चौदह कहानियों का संग्रह है। मैंने इस पुस्तक में केवल वहीं कहानियाँ संकलित की हैं जो हमारे आजकल के जीवन को चित्रित करके हमारी समस्याओं पर प्रकाश डालती हैं। प्रयास यह किया गया है

कि सब कहानियाँ जीवन के दृष्टिकोण से स्वस्थ हों और जीवन एवं समाज के भिन्न २ वर्गों का प्रतिनिधित्व करें ।

इन कहानियों के चयन में कुछ विशेष बातों को ध्यान में रक्खा गया है ; पहली बात तो यह है कि हिन्दी कहानी संग्रह होने पर भी इसमें केवल हिंदी की रचनायें ही नहीं है । कुछ कहानियां ऐसे कलाकारों की हैं जो हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में लिखते हैं । इनके अतिरिक्त दो कहानियां पँजाबी भाषा की हैं जो पंजाबी भाषा के सहित्य का प्रतिनिधित्व करतीं हैं ।

इन तीनों भाषओं की प्रतिनिधि कहानियों के सम्पादन का उद्देश्य स्पष्ट है । जहां इससे इन भाषायों के नये साहित्य को परस्पर समीप आने की सहायता मिलेगी, वहां हमारे हिन्दी के साहित्यकारों को यह भी मालूम होगा कि भारत की दूसरी भाषायों में किस प्रकार के साहित्य का सृजन हो रहा है और उसकी प्रवृति किस ओर है । इससे एक लाभ और भी होगा—विगत कुछ वर्षों से उर्दू भाषा के साहित्यकों का झुकाव हिन्दी की ओर रहा है । वे देवनागरी लिपि को अपनाना चाहते हैं परन्तु कुछ उन अयोग्य और साँप्रदायिकता में लीन साहित्यकारों के कारण वे झिझकते है जो हिन्दी को दूसरी संस्कृत बनाने का संघर्ष कर रहे हैं । कोई भी सजग और सुलझा हुआ व्यक्ति इन प्रयासों का स्वागत नहीं करेगा । यह पुस्तक ऐसे उर्दू साहित्यकों को पथ प्रदर्शिका का काम देगी । यदि इस पुस्तक की संकलित कहानियों की भाषा को देखा जाये तो मालूम होगा कि

यह भाषा वही जन साधारण की भाषा है जिसे भारत के प्रत्येक कोने में समझा जा सकता है और जिसे भारत के करोड़ों लोग देवनागरी लिपी में लिखते और अपनी दैनिक बोल चाल में प्रयोग करते हैं।

इस पुस्तक की एक और भी विशेषता है। इसमें शामिल होने वाले अधिकतर कलाकार वे नये उभरते हुये सूरज हैं जिन पर हमारे साहित्य के भविष्य का भार है, जो एक काल तक अपने प्रकाश से साहित्य जगत को आलोकित करते रहेंगे। इनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी अभी तक एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई, परन्तु इनकी कहानियाँ पढ़कर हमें यह विश्वास करना पड़ेगा कि भविष्य में यही लोग नये साहित्य की आशा हैं। भविष्य में इनके प्रयासों पर ही हमारे साहित्य की उन्नति एंव विकासशीलता निर्भर हैं।

इस पुस्तक में कृष्णचन्द्र, गयास अहमद गद्दी, छेदी लाल गुप्त, देवेन्द्र इस्सर, प्रकाश पण्डित, भैरव प्रसाद गुप्त, गुरुबचन सिंह, देवदत्त कौशल, हीरानन्द चक्रवर्ती, रामलाल, साजन प्रदेशी, संत सिंह सेखों, जीवन सिंह और संपादक शामिल हैं।

मैं उन लोगों का अत्यधिक कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे अपनी रचनाएँ इस पुस्तक में शामिल करने की अनुमति दी है।

अन्त में मुझे अपने अनुज कुमार 'विकल' और पूज्य सः जीवन सिंह एम.ए.; प्रोपः साहित्य सँगम एँव लाहौर बुक शाप का धन्यवाद करना है जिन्होंने मुझे सम्पादन कार्य में अपना पूरा सहयोग दिया है।

इकबाल गंज लुधियाना। सत्य पाल 'आनन्द'

१५ अगस्त १९५४

कृष्ण चन्दर

आखिरी बस

युग की आवाज़

कृष्णचन्द्र

आख़िरी बस

आख़िरी बस बारसवा के लिये तैयार थी। ग्यारह बज चुके थे। इसके बाद बारसवा कोई बस नहीं जायेगी। ग्यारह बजे रात के बाद जिसे बारसवा जाना हो, वह पैदल जाये, या तीन रुपया की घोड़ा गाड़ी में बैठे या फिर पाँच रुपये की टैक्सी ले। बारसवा बस-स्टैन्ड से तीन मील दूर हैं। रास्ता सुनसान और वीरान गढ़ों में से गुज़रता है। सड़क के दोनों ओर बड़े डरावने झाड़ हैं, जो चोरी चकारी और हत्या आदि के लिये अत्युतम स्थान हैं।

इक्के दुक्के यात्री प्राय: लूटे जाते हैं और आत्म-हत्या या हत्या के लिये लोग दूर दूर से यहाँ आते हैं जिनकी समाचार पत्रों में प्राय: चर्चा होती है। इसलिये बस-स्टैन्ड पर जो टैक्सी ड्राइवर हैं या घोड़ा गाड़ी वाले हैं वे प्राय: सिंध के मकरानी या सीमान्त के निडर पठान हैं और प्रत्येक समय अपने पास एक खंजर रखते हैं और रात को प्राय: पिये हुये मिलते हैं। इस पर भी ये लोग अकेले नहीं, दुकेले यात्रा करते हैं। बदमाशों और मवालियों का क्या भरोसा भाई।

इस लिये मैं गाड़ी के स्टेशन पर पुहंचते ही प्लेटफ़ार्म से भागा और जल्दी से आ के बस में बैठ गया।

बस खचाखच भरी हुई थी। यह सवारी की बस नहीं थी, सामान

की बस थी। दूसरी बसों में सामान आदि नहीं ले जा सकते, परन्तु सामान वाली बस में सामान रखने की आज्ञा है। दुसरी बसों में पैंतीस आदमी सवार होते है इस में केवल अट्ठाइस, फिर भी इसमें अट्ठाइस से अधिक आदमी होंगे। मैंने मन ही मन में आदमियों को गिनना शुरु किया—बत्तीस आदमी थे। क्या बस कन्डक्टर बत्तीस आदमियों को ले जायेगा ? आखिरी बस है—प्राय: बस कन्डक्टर नम्र-हृदय व्यक्ति होते हैं। आखिरी बस के समय अधिक कानून-दानी नही करते। चार पांच आदमी यदि नियत-संख्या से अधिक भी हों तो बिठाकर ले जाते हैं। फिर सम्भव है कि झगड़ा हो ! इस लिये मैं खूब अच्छी तरह जम कर अपनी सीट पर बैठ गया और इस संतोष से खिड़की के बाहर देख कर सीटी बजाने लगा, जैसे बस में सब से पहले मैं ही सवार हुआ था।

बस कन्डक्टर ने अन्दर आकर आदमियों को गिना, और कहने लगा, "चार आदमी अधिक हैं, उतर जायें।"

बहुत से आदमी एक दम बोल उठे—"जाने दो बस कन्डक्टर साहब ! आखिरी बस है। बेचारे पैदल कैसे जायेंगे ?"

बस कन्डक्टर ने मुस्कराकर घन्टी बजाई। ड्रायवर ने अपनी सीट पर बैठ कर पहले अन्दर की बतियां बुझा दीं और फिर इंजिन को स्टार्ट करने लगा। थोड़ी देर तक इंजिन के खाँसने की आवाज़ आई, फिर वह भी बंद हो गई। ड्राइवर ने स्विच दबा कर अन्दर की बतियां फिर जगा दीं और अपनी सीट से उतर कर इंजिन देखने लगा। यात्रियों के चेहरों पर निराशा दौड़ गई। बस कन्डक्टर ने तसल्ली देते हुये कहा—"अभी पांच मिनट में सब ठीक हो जायेगा।" यह कहकर वह भी बस से उतर कर ड्राइवर के पास चला गया।

मैंने इधर उधर देखा। मेरी तरह बहुत से यात्री ग्यारह बजे वाली बस पकड़ते हैं, इसलिये प्रायः जाने पहचाने चेहरे नज़र आने लगे। इनमें डाक्टर कामता प्रसाद का चेहरा था। गोलमटोल चेहरे पर कमज़ोर ठोड़ी एक ढीले से स्विच की तरह लटक रही थी। चेहरा निराश और थका थका था। मैंने सोचा, इस स्विच को ऊपर नीचे करने के बाद भी क्या इस चेहरे पर किसी तरह प्रकाश की विद्युत-लहर नहीं दौड़ सकती। अन्दर से मैंने यूं सोचा और ऊपर से डाक्टर साहब से यूं कहा, "बड़ी देर से आये हैं, आप ?"

कामता प्रसाद मेरी ओर देख कर मुस्कराया, बोला—"क्या करूं ? आज कल कम्पीटीशन बहुत हो रहा है। कारोबार मंदा है। दुकान पर देर तक बैठना पड़ता है।"

कामता प्रसाद की दंदानसाज़ी की दुकान फारस रोड पर और चीनी गली की नुक्कड़ पर थी। चीनी गली में चॉयीन डैन्टिस्ट चीनी की दुकान भी थी। वृद्ध चीनी तीस वर्ष से वहां जमा हुआ था। उसकी दो बेटियाँ फारसरोड में पेशा करती थीं और वह स्वयं दांत बनाता था। इसलिये रेट कम करने के उपरान्त भी कामता प्रसाद आमदनी में उसका मुकाबला नहीं कर सकता था।

"मैं अपनी लड़कियों से पेशा कैसे करवा सकता हूँ ?" डाक्टर कामता प्रसाद ने शिकायत करते हुये कहा—"इसलिये मुझे देर तक बैठना पड़ता है, मगर मैं इस सिलसिले में भी चॉयीन का मुकाबला नहीं कर सकता। वह तो अपनी दुकान ही में सोता है। अब मैं रात भर अपनी दुकान कैसे खोल सकता हूँ ? ग्यारह बजे तक दुकान खोलने की आज्ञा है—खोले रखता हूँ। इसके बाद यह बस भी पकड़नी होती है। इतनी दूर रहता हूँ।"

मैं चुप रहा !

डाक्टर ने एक आह भर के कहा—"यह दुनिया को क्या हो रहा है ?"

कामता प्रसाद की ठोडी का स्विच और भी नीचे लटक गया। मेरा बहुत जी चाहा कि स्विच को ऊपर नीचे हिला कर देखूं कि कहीं पर जीवन का कनैकशन होता है कि नहीं, मगर फिर यह सोच कर रह गया, आखिरी बस है, मुझे बहुत दूर जाना है। आखिरी बसस्टैन्ड से आगे भी पन्द्रह मिनट पैदल चलना है और मैं कोई एलैक्ट्रिक कम्पनी का मकैनिक तो हूँ नहीं कि ढीले स्विचों को दबा कर ठीक करता रहूँ—जहन्नुम में जाये, डाक्टर !

डाक्टर ने मेरी ओर देख कर बड़े निराशभाव से कहा—"अब तो दिन भर बैठे रहो तो भी ग्राहक नहीं आता। हां, रात को जब फारसरोड की गलियों में नाविकों के टोले आने लगते है तो प्रायः लड़ाई दंगा हो जाता है। किसी का दाँत भी टूट जाता है। बस समझिये, ठीक अवसर पर लोग दाँत निकलवाने या बनवाने आ जाते हैं। दुकान क्या है, फर्स्ट-एड का अड्डा है। अब एक मवाली को कमीशन देकर राज़ी कर लिया है कि वह टूट हुये दांतों के सारे केस मुझे भिजवा दिया करे। इस पर भी गुज़ारा नहीं होता।"

कामता प्रसाद की कहानी तीन दकानदारों ने भी सुनी, जो उसके समीप ही थे। उनमें से दो सिन्धी थे और एक पंजाबी था। बातचीत से मालूम होता था कि तीनों की दुकानें पास पास स्थित थीं। तीनों के तीनों रो रहे थे। कारोबार को क्या हो गया है ? सुबह बोहनी नहीं हुयी, शाम को दो रुपये कमाये, बस दो रुपये !

वे तीनों मदन लाल मिठाई वाले के प्रतिद्वन्दी थे। "ग्राहक को इधर आने ही नहीं देता कमबख्त, वहीं नुक्कड़ पर सम्भाल लेता है। हम मुंह देखते रह जाते है। जब इसकी अच्छी मिठायी बिक जाती है तो तब कहीं ग्राहक हमारी ओर आता है। जी चाहता है साले की दुकान को आग लगा दूं। आज सुबह से कुल बारह आने कमाये हैं। अब इसमें घर कैसे चलेगा।"

इसके बाद वे लगे विभाजन की बाते करने लगे —घर जो वे कराची में छोड़ आये थे। खाना जो लाहौर में था। हाय वह दूध ...वह घी...वह जलवायु! हमारी सरकार रिफ्यूजियों के लिये कुछ नहीं करती। मगर पाकिस्तान वाले, भाई कुछ भी कहो...इन मुसलमानों में बड़ा एका है।

वे लोग बातें कर रहे थे। मैंने नज़र घुमाई—खिड़की से टेक लगाये 'बेकल' ऐम०ए सम्पादक 'फिल्म रोज़' बैठा था। उसका सूखा भूखा, पतला, सुर्ख चेहरा भङ्ग के नशे में सबको घूरता हुआ मालूम होता था। यकायक उसने 'फिल्म रोज़' की फ़ाईल पर हाथ मार कर कहा—"हर रोज़ यहां देर हो जाती है। हर रोज़ इसी तरह देर हो जाती है। आठ–दस घन्टे फिल्म रोज़ के दफ्तर में काम करो, जैन साहब की घुड़कियाँ सुनो— फिर घन्टा भर बोरी बँदर के लम्बे क्यू में बस का इन्तजार करो। यहां पहुँचे तो बस खराब हो जाती है। क्या स्वराज्य है? बस कम्पनी को ताला लगा देना चाहिये।"

बस कम्पनी का एक कर्मचारी भी बस में बैठा हुआ था। रुमाल में आम बांध कर ले जा रहा था। वह गुस्से में ताव खाकर बोला। "क्या बकते हो!"

'बेकल' ऐम०ऐ० ने फिल्म रोज़ा की फाइल पर हाथ मार कर कहा, "ताला लगा दो! मैं कहता हूं बस कम्पनी में ताला लगा दो!"

"क्यों लगा दो?" कर्मचारी बोला—"इस लिये, कि इंजिन कभी कभार ख़राब हो जाता है। इसमें कम्पनी का क्या दोष है?"

"कम्पनी का दोष नहीं तो फिर तुम्हारा दोष होगा। जबसे तुम वर्करों ने यूनियन बनाई है, तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है—मैं सब अच्छी तरह समझता हूँ।"

"क्या समझते हो--?" कर्मचारी क्रोध से बोला।

"तुम हड़ताल करते हो—डबल भत्ता माँगते हो। मंहगाई का अलाउंस माँगते हो। कहाँ से रुपया आता है? हमारी जेबों में से जाता है। गरीब पब्लिक की जेब से जाता है। तुम मज़दूर मज़े करते हो और मिडल क्लास भूख से मरती है।"

बहुत से सफेद पोश, नाममात्र बाबू लोगों ने उसकी हाँ में हां मिलायी—इनमें कुछ चेहरे मैं पहचानता हूँ—सेठ जी थे। हाजी दाउद ठेकेदार थे, जिन्होंने जोहू पर पन्द्रह बिल्डिंगें बाधंने का ठेका लिया हुआ था। उनमें जयजय शाह, 'नव भारत' का सम्पादक था, जो अपनी पत्नी के साथ पिक्चर देखने के बाद वापिस आ रहा था। उनमें मलयाली क्रिस्चियन जान था, जो कि बी. ए पास करने के बाद भी बेकार था और नौकरी की तलाश में घूमता रहता था। उसकी काली मूंछों के नीचे से सफेद दाँत प्रायः चमकते दिखाई देते थे, इसलिये उसके चेहरे से पता नहीं चलता था कि वह गुस्से में है कि हंस रहा रहा है।

"हां, देखो न हम बी० ए० पास हुये, हमको नौकरी नहीं मिलता है। दो साल से नहीं मिलता है। यह चार तक पढ़ के साला मजे करता है, समाजवाद समाजवाद पुकारता है। हमारी तरह भूखा रहे तो सारा समाजवाद निकल जाये—एक दम।"

बस कम्पनी के कर्मचारी ने अस्तीनें चढ़ा लीं, परन्तु इसके समीप रेलवे कम्पनी का एक मज़दूर बैठा था। उसकी नीली, किन्तु मैली कुचैली तेल के चुकतों से दाग़दार वर्दी कोयले के गुबार से अटी हुई थी। उसके चेहरे पर भी कोयले की कालिख थी जिसके अन्दर से उसकी गहरी आंखों की रोशनी एक भयानक सुर्ख़ी की तरह चमक चमक जाती थी। लोग उसके कोयले से अटे हुये कपड़े देखकर उससे तनिक दूर बैठने की कोशिश कर रहे थे। रेलवे कम्पनी के मज़दूर ने बस कर्मचारी को बाज़ू से पकड़ कर कहा—"क्यों व्यर्थ में झगड़ा करते हो। इन लोगों को हमारी हालत क्या मालूम? जाने दो—! अभी थोड़ी देरमें बस चलेगी। ठण्डी २ हवा चले गी, फिर बाबू का दिमाग भी ठीक हो जायेगा।"

"तुम क्या समझते हो,—मेरा दिमाग खराब है?" मलयाली जान गुस्से में बोला। उसके दांत होंटो से बाहर निकल आये। ऐसा मालूम होता था कि अभी वह अट्टहास करके हंसने लगेगा। रेलवे मज़दूर को हंसी आ गयी। उसने मुंह फेर लिया।

जयजय शाह ने अपनी पत्नी से कहा—"बिटी डेविस का अभिनय तुम्हें पसन्द आया?"

पत्नी ने शाह की आखों में आँखें डाल दीं और धीरे से मुस्कराई, जैसे बिटी डेविस के अभिनय को शराब के घूंट की तरह पी रही हो।

जयजय शाह ने अपनी पत्नी के बाज़ू में चुटकी लेकर गुजराती में कहा—"तुम्हारी आंखें भी तो बस बिटी डेविस की तरह हैं।"

पत्नी ने बड़ी अदा से अपनी आँखें मटकायीं और गुजराती में अपने पति से कुछ कहा, जिस का मतलब लग भग यह था—"हट पगले!"

इसके बाद बहुत से यात्री एक दम बस कम्पनी की शिकायत करने लगे—"यह कया मजाक है ? कया हम रात के बारह बजे घर पहुचेंगे । कम्पनी को तत्काल ही दूसरी बस का प्रबन्ध करना चाहिये । बल्कि एक फ़ालतू बस हमेशा अड्डे पर खड़ी रखनी चाहिये । साले जंगली लोग है । इन को कुछ पता ही नहीं ।"

एक मारवाड़ी बिज़नसमैन स्विटज़रलैन्ड की बसों की चर्चा करने लगा—"जब मै स्विटज़रलैंड में था ।" परन्तु उसकी आवाज़ दूसरे लोगों के शोरशराबे में डूब गई और जब बस कन्डकटर शोर सुन कर बस के अन्दर दाखिल हुआ तो सब आवाजें एक भूखे कुत्ते की तरह उस पर झपट पड़ीं । हर एक चेहरा वहशी और वीभत्स नज़र आ रहा था । दिन भर की थकन और घुटन, निराशा, परिश्रम की सहनशीलता और उद्देश्य हीन प्रतीक्षा, थकन और क्रोध और झुंझलाहट ! चेहरे पर रगें और नसें यूं उभर आयीं थीं कि जैसे भरे बाज़ार में कोई घटना घट जाये और बिजली के बहुत से तार एक दूसरे के साथ उलझ कर गिर पड़ें । प्रत्येक व्यक्ति अपनी असफलता के ज्वर में तप रहा था और झुंझला कर अपना गुस्सा कन्डकटर पर उतार रहा था । कन्डकटर भी आठ घन्टे की निरन्तर खड़े खड़े काम वाली ड्यूटी से उकताया हुआ था । आवाज़ें सुनते ही बरस पड़ा "तो मैंने कया जान बूझ कर बस रोकी है ? कया मैं अपने घर नहीं जाना चाहता हूँ ? कया मेरे बाल बच्चे नहीं हैं ? कया मुझे भुख नहीं लगी ? तुम लोग तो अभी अभी अपने घरों को पुहंच जायोगे । मुझे बरसवा से वापिस कोलाबा जाना होगा—यहां से बीस मील दूर......उस का भी ख़्याल है ? सब अपनी अपनी हांक रहे हैं ।

"हाँक रहे हैं ?" जयजय शाह को उस दो टके के बस कन्डकटर पर गुस्सा आ गया । बस में खड़ा हुआ चिलाने लगा—"हम हांक

रहे हैं, तुम फ़रमा रहे हो। अभी अपने शब्द वापिस लो वरना अखबार में खबर लूंगा। तुम जानते नहीं मैं कौन हूं?"

"कौन हो?" बस कन्डकटर ने गुस्से से पूछा—"बम्बई के गवर्नर हो?"

"मैं जयजय शाह हूँ, नवभारत का संपादक! जन्ता का प्रतिनिधि। तुम ने मेरा अपमान किया है। हमें क्या गधा समझा है, उल्लु।"

"शट अप!" कन्डकटर ने आगे बढ़ कर कहा।

"यू-शट अप"—जयजय शाह ने क्रोध से थर थर काँपते हुये कहा।

रेलवे का मज़दूर दोनों के बीच में आ गया! इतने में गयारह दस की गाड़ी भी आ गई और जब उन लोगों ने देखा कि आख़िरी बस अभी तक अड्डे पर खड़ी है तो वे लोग भी बस की ओर भागे।

"आ जाओ......आजाओ।" जनारकर आमवाले ने अपने टोकरे को सीट के नीचे दबाते हुये कहा।

बस कन्डकटर ने लोगों को रोकने की कोशिश की, परन्तु लोग अन्दर आते ही चले गये। अब बस के लोग कन्डकटर से बहुत नाराज़ थे, इसलिये किसी न किसी तरह सुकड़ कर वे आने वालों को अन्दर जगह देने की कोशिश कर रहे थे। थोड़ी देर में जहाँ बतीस आदमी थे, वहाँ अस्सी आदमी भरे पड़े थे।

बस कन्डकटर ने गाड़ी से नीचे उतर कर कहा—"अब अट्ठाइस से ऊपर मैं एक आदमी भी नहीं लेकर जाँऊगा।"

"तुम्हें सब आदमी ले जाने होंगे।" शाह चीख़ कर बोला।

3155

"ठीक है-ठीक है।" जर्नाकर ग्राम वाला, पिसटन जी भाजी वाला और 'बेकल' ऐम. ए. ने चिल्ला कर शाहजी की हां में हां मिलाई।

रेलवे के मज़दूर ने जर्नाकर से कहा—"यह क्या धमाली मचाते हो? अट्ठाइस आदमी की बस हैं, वह बत्तीस ले जा रहा है। अब तुम दूसरे आदमीयों को अन्दर आने का निमन्त्रण देते हो? बस इनता बोझ कैसे ले जा सकती है। अकल की बात करो।"

"हाँ, सारी अकल तो तुम में भरी पड़ी है।" जर्नाकर ग्रामवाले ने बड़े घमण्ड से मज़दूर के गन्दे कपड़ों की ओर देखकर कहा और गाड़ी से बाहर खड़ी गोरे रङ्ग की सिन्धी स्त्री से कहा—"मां अन्दर आ जाओ, तुम भी अन्दर आ जाओ—यह बस सब को ले कर जायगी।"

बहुत से लोग हंसने लगे। बस का कन्डकटर दाँत पीसकर रह गया। बोला। "अभी पुलिस का सिपाही बुलाता हूँ।" इतना कह कर वह समीप के इरानी रेस्तराँ में पुलिस को टेलीफोन करने चला गया।

"लाने दो उसे पुलिस को।" दरबारासिंह फ्लूटिया जो शराब के नशे में मत था, बोला। "हम पुलीस से डरते हैं? बस वालों से डरते हैं? दरबारा सिंह किसी से नहीं डरता। उस रोज़ होली के दिन मैंने एक मदरासी के मुंह पर रङ्ग मल दिया। साला बोला—"हम तुमको मारेगा।" मैंने डॉग मार कर उसका सिर तोड़ दिया। साला भाग गया। दूसरे दिन फिर बस में मिला। सिर पर पट्टी बाँधे था। मैंने कहा, तुम मदरासी है तो हम दरबारासिंह है। हम तुम्हारा सिर तोड़ देगा। पुलीस को बुलाओ। सबके सामने तुम्हारा सिर तोड़ देगा।"

दरबारा सिंह की पगड़ी उतरी हुई थी। उसका चेहरा सराब से सुर्ख

था। उसके घुटनों पर उसका फ्लूट एक बक्स में बंद पड़ा था।

वह गुस्से में चिला कर बोला, "यह साला बस क्यों नहीं चलाता।"

एक आदमी ने दरबारासिंह से कहा, "वह पुलीस को बुलाने गया है।"

"बुला के लाये! पुलीस क्या अपने बाप को बुला कर लाये। दरबारासिंह सबका सिर तोड़ देगा।"

बहुत से लोग दरबारा सिंह की प्रशंसा करने लगे—"बड़ा जी वाला आदमी है। निर्भय अकेले दस आदमियों का मुकाबला कर सकता है।"

दरबारसिंह ने प्रसन्न हो कर कहा—"पूछ लो उस मदरासी से पूछ लो। बोला तुमने हमको मारा। मैंने कहा हां साले हमने तुमको मारा। आज भी मारा, कल भी मारेगा। हमारा नाम दरबारासिंह फ्लूटिया है। सारा बम्बई हमसे डरता है।"

जनोकर ने कहा— "इस बस कन्डकटर के बच्चे को अब ऐसा मज़ा चखाऊंगा कि याद ही करेगा।"

थोड़ी देर में बस के बहुत से आदमी एक साथ बातें कर रहे थे। हर व्यक्ति अपनी बहादुरी और निर्भीकता की मनघडत कहानियां सुना रहा था। केवल एक रेलवे का मज़दूर चुप बैठा था और एक नव दम्पति थे जो दूसरी गाड़ी से आये थे। वे उस वातावरण से अलग होकर केवल एक दूसरे को देखने में व्यस्त थे।

मैं भी यकायक बस के इस सारे दृश्य को भूल गया। आह! कैसा सौन्दर्य था! दस बर्ष के बाद ऐसा सौन्दर्य देखने को मिला

था। इसे देखकर मैं बस से उठकर बहुत दूर चला गया। मेरे मस्तिष्क में गुलाब खिलते गये जो कभी तेरे होंट थे! वह नवरस कलियाँ जो तेरी बातें थी! वे चुम्बन जो कभी मेरे थे! क्या वह झरना अभी तक बह रहा है? क्या तुम उसी तरह सेब की डाली की भान्ति झुकी खड़ी हो? क्या तुम्हारे अन्तस में प्रणय की मृदुल कलियाँ अभी तक मनुहार कर रही हैं? क्या तुम्हारी आँखों के नीलाकाश पर मेरी चेतना का उदभ्रान्त तारा अभी तक डोल रहा है? कहाँ है तू? मेरे विगत प्रेम के पचीस वर्ष की प्रतिध्वनि.......? तू क्यों इस समय रात के सन्नाटे में एक दूर जाने वाली गाड़ी की ध्वनि की तरह मुझे चौंका देने आई है? अपनी स्मृति को वापिस ले जा। क्योंकि अब मेरे सामने कुछ नहीं है...कोई गुलाब नहीं है...कोई कली नहीं है...मैं हूं, ...जीवन का बस स्टैंड है और आखिरी बस का इंतजार है...।

मैंने उस लड़की और लड़के को एक दूसरे पर झुकते हुये और एक दूसरे के कानों मे बातों करते हुये देखा......नहीं, नहीं, यह वह नहीं है...कदापि...कदापि वह नहीं...तुम्हें उसकी ओर नहीं देखना चाहिये।

मैंने दृष्टि फेर ली और खिड़की से बाहर देखने लगा—बस कन्डक्टर एक पुलीस इन्सपैक्टर और स्टेशन लाइन के तीन सिपाहियों को लेकर आ रहा था।

यकायक लोगों का शोर थम गया। चेहरे भयभीत हो गये। जनाकर और दरबारा सिंह जो सब से बढ़ चढ़कर बातें कर रहे थे यकायक ऐसे चुप हो गये जैसे उनको साँप सूँघ गया है। जयजय शाह बार बार अपने माथे से पसीना पूंछने लगा। उसकी पत्नी गुजराती भाषा में लगभग उसे तस्सली देती जाती थी।

पुलीस इन्सपैक्टर ने अन्दर आते ही गरज कर कहा—"इतने फालतू आदमी यहाँ क्यों बैठे हैं? निकालो इन सब को!"

सब लोग चुप रहे!

"कौन कौन देर से आया है?" इन्सपैक्टर ने दृढ़ता से पूछा।

सब लोग चुप रहे।

इन्स्पैक्टर ने घूम कर कन्डक्टर से कहा—"तुम बताओ न, अब मैं किस को निकालूं...किस को रक्खूं।"

बस कन्डक्टर ने जयजय शाह की ओर इशारा किया—"यह आदमी देर से आया है।"

जयजय शाह ने कांपते हुये गुस्से से कहा—"यह झूठ बोलता है, इन्स्पेक्टर साहब, मैं तो कब से इस गाड़ी में बैठा हूं, अपनी पत्नी के साथ। पूछलो इससे।" उसने अपनी पत्नी की ओर इशारा किया।

इन्सपैक्टर मुस्कराया, बोला—"तुम नीचे आ जाओ।"

"मगर...।"

"अगर मगर नहीं चलेगी।"

"मगर मेरी पत्नी मेरे साथ।"

पत्नी बोली—"मैं बस में घर पहुँच जाऊंगी। तुम व्यर्थ में झगड़ा मत करो।"

जयजय शाह ने घूर कर अपनी पत्नी की ओर देखा और फिर धीरे से बोला—"मैं...नव-भारत का सम्पादक हूँ—मैं जन्ता का प्रतिनिधि हूँ...मैं समझ लूंगा।"

पुलीस इन्सपैक्टर ने कहा—"मैं स्वयं बहुत थका हुआ हूं। अब मैं अपनी ड्यूटी छोड़ कर जाने वाला था कि यह आ गया। मुझे

मत सताओ—जल्दी जल्दी बोलो—कौन-कौन देर से आया है।"

कोई नहीं बोला।

बस कन्डक्टर ने जर्नाकर आमवाले की ओर देखकर कहा, "यह भी देर से आया है।"

"मैं—मैं...! इन्सपैक्टर साहब—" जर्नाकर गिड़गड़ा कर बोला —"मैं तो बस में सब से पहले घुसा था। बस एकदम खाली था जब मैं घुसा।"

"बाहर निकलो।" इन्सपैक्टर बोला।

"यह दरबारा सिंह है।" कन्डक्टर दरबारा सिंह का नाम तक जानता था। दरबारा सिंह ने खामोशी से अपनी पगड़ी और फलूट सम्भाला और नीचे उतर गया।

बस कन्डक्टर ने मेरी ओर घूर कर देखा। मेरा रङ्ग फक़ हो गया, किन्तु मैं किसी न किसी तरह से मुस्कराता रहा। कन्डक्टर ने आगे बढ़ कर पिसटन जी भाजीवाला को उतार दिया।

जब वह कुन्ती लाल धोबी को उतारने लगा तो उसे बहुत गुस्सा आया। कुन्ती लाल धोबी ने उसे चनौती देते हुये कहा— "आना कभी सात बगँले की ओर, तेरी अच्छी तरह बोटी...।"

बस कन्डक्टर ने घबराकर पुलीस इन्सपैक्टर से शिकायत की, —"सुन लीजिये हजूर-अभी से धमकी दे रहा है।"

"क्या कहा ?" पोलीस इन्सपैक्टर ने गरज कर पूछा। उसने कुन्ती लाल को कन्धे से पकड़ लिया और एक सिपाही से कहा— "इसे थाने ले जाओ और डबल चार्ज मारो।"

"नहीं हजूर...नहीं हजूर ...मैं तो आपका गुलाम हूँ ।" कुन्ती लाल गिड़गड़ाया ।

बस कन्डक्टर फिर मुझे घूरने लगा । मैं उसकी ओर देखकर मुस्काराया और उसे हाथ के इशारे से अपनी ओर बुलाया । जब वह मेरी ओर झुका तो मैंने उस की ओर झुककर बड़े रहस्यमय ढङ्ग से कहा—"वह आदमी जो खिड़की से बाहर देख रहा है ना ?" मैंने डाक्टर कामता प्रसाद की ओर देख कर कहा—"दूसरी गाड़ी से आया है ।"

बस कन्डक्टर ने डाक्टर कामता प्रसाद के कन्धे पर हाथ मार कहा—"निकलो बाहर ।"

"मगर मैं...सच कहता हूं । मैं सब से पहले... पछ लो इससे ।" डाक्टर ने मेरी ओर देखकर कहा, किन्तु मैं खिड़की से बाहर देख रहा था ।

उस लड़के और लड़की को निकालने का धैर्य उस कन्डक्टर में न था । वह कई बार उसके पास से होकर चला गया । वह कई बार उनके पास आकर ठिठका, फिर घबरा कर आगे चला गया । कई बार वह प्यार के तट पर आकर रुका, किन्तु प्यार ऐसा अपने आप में खोया हुआ था, ऐसा बेगाना था, ऐसा मादकता में लीन था । दिल के द्वारों को बंद करके ऐसा बेसुध सोया पड़ा था कि उसे द्वार खटखटाने की हिम्मत न पड़ी । वह चुप चाप आगे चला गया और दूसरे दो आदमियों को बाहर भेजने लगा । वे लोग खुदा और भगवान की गवाही पेश कर रहे थे, किन्तु बस कन्डक्टर के कान बहरे हो चुके थे । उस समय वह केवल समुन्द्र का संगीत सुन सकता था ।

"अब गिनो !" इन्सपैक्टर ने बस कन्डक्टर से कहा।

उसने आदमी गिने। उनतीस यात्री थे। मुझे तो वह अब किसी तरह नहीं निकाल सकता था। मेरे और उसके बीच मीर जाफ़र का सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। बस में वही गोरे रङ्ग की सिन्धी औरत रह गयी थी जो वास्तव में देर से आई थी। उसे अड्डे पर सब जानते थे। वह बुढ़िया एक नाइट स्कूल में अध्यपिका थी और सब से आखिर में बस स्टैन्ड पर पहुँचती थी। इसके पास हमेशा एक बड़ा थैला होता जिसमें आलू, टमाटर पयाज़ और दूसरी सब्ज़ियां होतीं। वह विधवा थी और हमेशा सफ़ेद कपड़े पहनती थी जिनमें प्रायः पैवन्द लगे रहते थे।

बस कन्डक्टर ने अनिन्दा पूर्वक उससे कहा—"तुम भी उतर जाओ।"

"फिर यह इस समय कहां जायेगी ? कैसे अपने घर पहुँचेगी !"

पुलीस इन्सपैक्टर ने कहा—"मैं क्या कर सकता हूँ। यह म्युनिसपल कमेटी का हुक्म है।"

"मगर मेरे बच्चे, मेरे पास बसी के लिये पैसे नहीं। मैं तीन मील कैसे जा सकती हूँ। रात के बारह बजे है। मुझे जाने दो, मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूँ।"

वह पुलीस इन्सपैक्टर के पाँव छूने लगी।

पुलीस इन्सपैक्टर ने उसे जल्दी से परे हटाते हुये कहा—"मैं मजबूर हूँ। मैं कुछ नहीं कर सकता। बस कन्डक्टर ने शिकायत की है। मैं अट्ठाईस से अधिक आदमियों को इसमें सवार नहीं होने दूंगा।"

"भगवान के लिये मुझे जाने दो।" —बुढ़िया गिड़गिड़ाने लगी। "मुझे दस बजे नाइट स्कूल से छुट्टी मिलती है। ग्यारह

बजे यहां पहुँचती हूँ। अभी घर जा कर अपना खाना बनाऊंगी। एक विधवा पर तरस खाओ।"

वह रोने लगी।

पुलिस इन्सपैक्टर ने बस में बैठे हुये आदमियों की ओर देखकर कहा—"यदि आप में से कोई एक आदमी उतर जाये और इस बुढ़िया को जाने दे तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

कोई अपनी सीट से नहीं हिला—न हाजी दाऊद, न मैं, न 'बेकल' एम-ए, न वह मारवाड़ी जो स्विटज़रलैण्ड से होकर आया था, न वे सिन्धी दुकानदार। गाड़ी में सब लोग बड़े संतोष से बैठे रहे और खिड़कियों से बाहर देखते रहे जैसे पुलीस इन्सपैक्टर उनसे नहीं, शून्य में किसी से कह रहा हो।

पुलीस इन्सपैक्टर ने बुढ़िया से कहा—"कोई नहीं उठेगा—तुम्हें नीचे उतर जाना पड़ेगा।"

बुढ़िया ने सिसकियां लेते हुये अपने झोले को सम्भाला, चारों ओर बस के निर्दयी यात्रियों को देखा और फिर मुड़ कर धीरे २ बस से बाहर जाने लगी।

यकायक नीली वर्दी वाला, मैले कुचैले तेल के धब्बों वाला, इंजिन में कोयला झोंकने वाला मज़दूर उठ खड़ा हुआ। उसने धीरे से बुढ़िया को रोककर कहा—"तुम इस सीट पर बैठ जायो, मैं बाहर जाता हूँ।"

इतना कह कर उसने एक आँतकमयी दृष्टि से बस में बैठे हुए सुसज्जित आदमियों को देखा। उसके काले चेहरे पर उसकी आंखें दो सुर्ख बत्तियों की तरह चमक रही थीं। वह कुछ कहना चाहता था, फिर उसने अपने आपको रोक लिया और ख़ामोश होकर लँगड़ाता,

अपनी सोटी का सहारा लेता हुआ नीचे उतर गया। उसकी बाइँ टाँग पर पट्टी बंधी हुई थी। शायद वह खुद नीचे नहीं उतरा था बल्कि बहुत से लोगों को उनकी आत्मा की सीढ़ी से नीचे उतार गया था क्योंकि जब बस चली तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी सीट पर भयभीत बैठा था। चीचक के दाग़ों वाला गंजन जो बम्बई टाकीज़ में काम करता था, उससे वह ख़ामोशी सहारी न गई। उसने मेरी ओर देखकर बड़े रहस्य-मय ढंग से मुस्करा कर कहा—"भाई साहब आप भी तो देर से आए हैं।"

मैंने गरज कर कहा—"मैं कहां देर से आया हूं ! क्या बकते हो ?"

गंजन मेरे गरजने पर हैरान रह गया। अपने आप को संभालते हुए बोला —"हाँ भाई आप पहले आए थे मुझसे ग़ल्ती हो गई।"

"तुम हमेशा ग़ल्ती करते हो।" मैंने चिल्लाकर कहा।

गंजन चुप हो गया —गाड़ी में कोई नहीं बोला।

बस मोड़ पर से गुज़री और लंगड़ाते हुए मज़दूर को पीछे छोड़ गई। खिड़की के बाहर देखने वाले लोगों ने यकयाक अपने चेहरे अन्दर कर लिए, परन्तु उसकी सोटी की टकटक उनके दिलों के सख़्त फ़र्श पर एक हथोड़े की चोट की तरह बजती गई। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जगह पर लज्जित, निस्तेज, एक कांपते हुए कुत्ते की तरह दुम दबाये चुपचाप बैठा था।

यकायक मुझे अनुभव हुआ—जैसे यह बस आगे नहीं पीछे-पीछे चल रही है, और वह मजदूर हम से कहीं बहुत दूर आगे जा रहा है।

गयास अहमद गद्दी

परछाइयां

युग की आवाज़

गयास अहमद गद्दी

परछाइयाँ

ड्रीमलैन्ड होटल में लोग आने-जाने लगे हैं। एक-एक करके काफी लोग पहुंच गये हैं। खाली मेज़ें भर रही हैं। कई सुन्दर चेहरे भी दिखाई देने लगे हैं। रंगीन और मूल्यवान कपड़ों से 'इवनिंग इन पैरिस' की सुगंधित लपटें आ रही हैं, खूबसूरत मुस्कुराहटें बिखर जाती हैं, कोई सुन्दर जोड़ा एक दूसरे के बाजू का सहारा लिए प्रविष्ट होता है तो प्रतीक्षा करती हुई निगाहें बड़े प्रेम के साथ 'स्वागतम्' कहती हैं और मुर्झाये हुए चेहरों पर झूमती हुई बाहर की सी मोहकता छा जाती है। काउंटर पर बैठे हुए मैनेजर की आँखों में व्यापारियों की सी चमक आ जाती है और वह सफ़ेद वर्दियां पहने मेमों से दीख पड़ने वाले बैरों को बड़ी कड़ी नज़रों से देखने लगता है जो अब तक पिछली दीवार का सहारा लिए ऊँघ रहे होते हैं। उत्तर में यह बैरे कोक भरी हुई गुड़ियों की तरह गर्दन झुकाये इधर-उधर दौड़ने लगते हैं, थके हुए चेहरों पर जबरदस्ती की मुँझलाहट पैदा किये हुए 'ड्रीमलैंड' में जीवन का संचार होने लगता है। लोगबाग बातों में मग्न हैं - प्रेम की बातें, वियोग की पीड़ा में डूबी, हृदय स्पर्शी बातें कि आँखों में बाढ़ सी उमड़ी चली आ रही है! कोयले और अबरक की खानों और नई मिलों की बातें! कलकत्ते के रेसकोर्सों में जीते हुए उस असंख्य धन की बातें जो रात को रात किसी बंगाली फिल्मस्टार की गोद और फ्रांस की पुरानी शराब में डुबो दिया गया!

—फिर कहकहे, छेड़छाड़, चम्मचों और प्लेटों की आवाज़ें, एक

प्यारा सा शोर, एक मोहक, एक हंगामा और इन सबके बीच सफेद वर्दियों में लिपटे हुए बैरों की झुकी हुई गर्दनें और सौंदर्य और धन के आतंक से कांपते हुए होंठ, बड़े सहमे हुए अन्दाज में, जैसे कि राज्य कर रहे समय के आधीश को जगाने वाली सेविकाओं के खरीदे हुए होंठ हिल रहे हों,—"यैस सर"..."बहुत अच्छा साहेब"...."आल राईट सर"...

रसगुल्ले से भरी हुई प्लेट को धकेलते हुए मारवाड़ी सेठ ने अपने सामने बैठी हुई एंग्लो-इंडियन प्रेयसी से कहा, "अरे खाओ डार्लिंग, शर्माना कैसा ?"

यह सुन्दरी जिसकी आँखों में पवित्रता थी, बड़ी चोर निगाहों से इधर-उधर देखती है, आस-पास बैठे हुए लोगों की निगाहों में कुछ ढूंढती है और फिर मुस्कुरा कर अपने प्रेमी को देखती है। रसगुल्ले को तकती है और फिर धीरे से काँपती हुई ऊंगलियों में थामे हुए रसगुल्ले को फँसाकर मुंह में रख लेती है और धीरे-धीरे मुंह चलाती है। उसका चेहरा लज्जा से काश्मीरी सेब के समान लाल हो गया है, चढ़ते सूरज की तरह पवित्र।

"न लजा, सुन्दरी ! सुबह की बहार, न शरमा !...विष में डूबे हुए यह रसगुल्ले जब धीरे-धीरे तुम्हारी आत्मा को गहरी नींद सुला चुके होंगे, उस समय यह काश्मीरी सेब सड़-गल कर पीले हो चुके होंगे आंखों की पवित्रता तब मर चुकी होगी। उस समय रसगुल्ला तो क्या सिगरेट के एक टुकड़े के लिए तुम सब कुछ लुटाती फिरोगी और लोग उसके लिए भी तैयार न होंगे। काश्मीर के सेब आज ही से पक रहे हैं, अतः ए सुन्दरी.........'

बैरे ने चाय की ट्रे सामने लाकर रख दी है।

"बैरा, तुम्हारी अवस्था क्या है ?"

"चालीस वर्ष, साहब !"

"कितने वर्ष से बैरे का काम कर रहे हो ?"

"कोई छब्बीस वर्ष हुए !"

"पूरे छब्बीस वर्ष हुए !"

"यैस सर !"

"इन छब्बीस वर्षों में तुमने 'यैस सर' के अतिरिक्त भी कुछ सीखा है ?"

"नहीं साहब ! मगर मेरा बेटा, सम्भवतः वह सब कुछ सीख रहा है जो मैंने नहीं सीखा। वह हरामजादा होटल की नौकरी नहीं करना चाहता, वह शीशे के बर्तन सिर पर लिए गली-गली में मारा मारा फिरता है। उल्लू का पट्ठा, लौंडा बिल्कुल सिड़ी निकला हुजूर, बिल्कुल सिड़ी"। फिर उसने कोई बड़ी गुप्त बात बताने के से ढंग से कहा, "कभीकभार होटल की कोई अच्छी-सी चीज चुरा कर ले जाता हूं तो उसे नहीं खाता है। कहता है कि इस खाने से उसे आँखों से कम दिखाई देने लगेगा। ही ही हे हे...हरामजादा ! जनाब ऐसा खाना तो उसने उमर में चखा तक न होगा। वैल सर ?"

"यैस सर !"

उसने अपने बुद्धू बेटे की शिकायतें करके मेरी 'फेवर विन' कर ली है, उस नालायाक सन्तान की शिकायतें, जिसने अपने बाप का पढ़ाया पाठ भूलकर जीवित रहने के लिए एक अलग मार्ग अपनाया है। 'नासमझ छोकरे, अब तुम्हें बाप की सम्पत्ति में से एक कौड़ी भी न मिलेगी।"

दृष्टि उठी तो दरवाज़े पर खड़े हुए नवाब साहब दिखाई दिये। आज उनके साथ एक के स्थान पर दो लड़कियां है, मूल्यवान अमरीकन सूट पहने। वे उकताया हुआ चेहरा लिए एक खाली मेज़ के पास बैठ जाते हैं :—

"क्या हाल हैं हुजूर नवाब साहब ?"

"मैं बहुत परेशान हूं !" मैं बहुत परेशान हूं !

अपने पिता के स्वर्गवास के पश्चात् जब नवाब साहब ने अपने धन का अन्दाजा लगाया तो उनकी आँखें चुंधिया गई और वे कालेज की पढ़ाई, वर्ड्ज़वर्थ के कवित्व, शैले की कविताओं और शैक्सपीयर के साहित्य को भाड़ में झोंक अपने बचपन के चाव को पूरा करने बम्बई चले गये और वहां उन्होंने अपने शौक को पूरा किया अर्थात् एक फिल्म बनाई। फिल्म असफल रही।—"कोई बात नहीं नवाब साहब, कोई बात नहीं, यह तो होता ही रहता है। चार ही लाख की तो बात है। एक बार कोशिश और सही। कभी न कभी......"

नवाब साहब ने यार-दोस्तों की परामर्श से एक और चित्र बनाना आरम्भ किया। "नवाब साहब देखी है आपने, क्या ग़जब की छोकरी है, क्या जवानी है। क्या छाती का उभार है। वह जो किसी ने कहा है न कि 'वह उधर बाँध के रखा है जो माल अच्छा है' के हर एक शब्द को सत्य कर दिखा रही है। केवल एक बार स्वयं देख लें......"

"हजूर 'फ़िल्म हिरोइन' ने आज रात आप ही के यहां रिहर्सल के लिए कहा है...हुजूरयह...हजूर वह''....और इस प्रकार से नवाब साहब के ग्यारह लाख रुपये खर्च हो गये और फिल्म की आरम्भिक तैयारी भी पूरी न हो पाई। तो अचानक एक दिन जब नई एकस्ट्रा ने पाँच हीरे वाले टिकाउ हार मांगे और उनकी दृष्टि बैंक बैलैंस की तरफ गई तो उनके हाथों के तोते उड़ गये। ठीक उसी समय यार-दोस्तों, नई एकस्ट्रा गर्ल और फिल्म की हीरोइन, एक के बाद एक को आवश्यक कार्य याद आने लगे। और नवाब साहब ने देखा कि कम्पनी के बहुत से नौकर उनके आगे-पीछे घूमने लगे हैं, तो उन्होंने चुपके से एक रात यह कह कर कि नई फिल्म की आउटडोर शूटिंग के लिए, कोल्हापुर के स्थान का निरीक्षण करने जा रहा हूं, अपना बिस्तर तक

छोड़कर बम्बई से चले आये। और अब, "मैं बहुत परेशान हूं, बहुत परेशान...."

'आप बहुत परेशान हैं, इस सुन्दर सूट में, इन दो लड़कियों के बीच ? ड्रीमलैंड के रूमानी वातावरण में आपको शान्ति नहीं ?"—और वह हरामज़ादा बैरे का बेवकूफ छोकरा कहता है, गली-गली घूमने और सूखी रोटी में बड़ा मज़ा है। बूढ़ा बैरा सच कहता है कि लड़का सिड़ी है। सोलह आने सिड़ी दीख पड़ता है। नवाब साहब एक खाली मेज़ पर चुपचाप बैठ गये हैं। उनको देखने से लगता है जैसे सच में में वे बहुत परेशान हैं।

नवाब साहब के साथ वाली मेज़ पर एक अधेड़ आयु की स्त्री एक सत्रह अट्ठारह के नवयुवक की टांगों में टांगे फंसाये बीअर की हल्की हल्की चुस्कियां ले रही है। उसकी साडी चाकलेट कलर की है और ब्लाउज़ सफेद, जिस पर स्थान-स्थान पर शीशे लगे हुए हैं। उसका शरीर पिलपिला सा हो गया है, किन्तु चेहरा पाउडर की तह की कृपा से सुन्दर लगता है। वह बूढ़ी होकर भी जवान है। उसने अपनी आयु को जिसपर पतझड़ आई हुई है, कृत्रिम बहार से ढक लिया है। अवस्था की यह मंज़िल उसे पसंद नहीं क्योंकि उसका विचार है कि प्रेम के लिए यह मंज़िल ठीक नहीं और प्रेम वह मानसिक भोजन है जिसके बिना जीवन अधूरा है, अपूर्ण है, और उस रात की तरह है जिस में पूनम की चाँदनी न हो। इसने शादी नहीं की है। माता पिता के लाखों रुपये बैंक में उसके नाम सुरक्षित हैं, जिसके सहारे वह आज भी जवान है। और आज भी बेकार ग्रेजूएटों के गर्म और स्वस्थ शरीर खरीद सकती है। स्वतंत्रता जन्मसिद्ध अधिकार है और इस जन्मसिद्ध अधिकार की रक्षा के तरीकों से वह भली प्रकार से भिज्ञ है। लोग बेसमझ हैं जो उसे विवाह का परामर्श देते हैं, यूं बंधन में पड़कर मनुष्य एक अधिकार से वंचित हो जाता है, फिर बच्चे

अलग, न बाबा !...न बाबा, मुझे यह जिंदगी पसंद नहीं, मुझे तो प्रतिदिन एक नई चीज़ चाहिए...जहाँ कोई नया चेहरा देखा कि भोला दिल मचलना आरम्भ कर देता है कि हम तो यही लेंगे।

नवाब साहब को अपने पास पाकर उसकी आंखें चमक उठी हैं। अहा, कितना सुन्दर नवयुवक है, कैसा पुष्ट शरीर है। उसकी निगाहें नवाब साहब के परेशान, किन्तु सुन्दर चेहरे पर टिकी हुई है, और चेहरे से यूं दीख पड़ता है जैसे मुस्कुराहट खिली पड़ रही हो। उसने अपने साथ वाले नवयुवक को एकदम भुला दिया है। और अब उसकी टांगें भी अलग हो चुकी हैं—अहा, कितना सुन्दर नवयुवक है। कितना............

"नवाब साहब, परेशान होने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं। आजकल स्त्री के शरीर की ही नहीं, पुरुष के शरीर की भी कीमत लग सकती है........अब परेशान होने की आवश्यकता नहीं, नवाब साहब ! अब वह अधूरी फिल्म अवश्यमेव पूरी हो जायेगी—क्योंकि अब नादान का दिल मचल रहा है कि हम तो यही लेंगे।"

अब 'ड्रीमलैंड' में जीवन की लहरें बढ़ रही हैं। ग्राहकों की संख्या भी बढ़ने लगी है। कुछ देर पहले जो ऊँघता हुआ बुझा-बुझापन यहाँ था, वह धीरे-धीरे गाहकों के शोर में बदल रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि अब तक जो जीवन नींद की गोद में पड़ा हुआ था, धीरे-धीरे जाग रहा है। किन्तु इसकी आँखों की सुस्ती और नींद की मस्ती शेष है। कुछ क्षण पश्चात् आलस्य और मस्ती एक गहरी हलचल में इस प्रकार खो जायेंगे कि ढूंढे से भी सारे बाज़ार में न मिलेंगे। और वह समद शर्माई लजाई जिंदगी बेहयाई से नाच उठेगी और सुन्दर स्त्रियाँ, जिन्हें देखने से एक प्रकार की प्रसन्नता और

जीवन का अहसास जाग उठता है, शराब के नशे में धुत्त, लड़खड़ाते हुए कदमों से अपने प्रेमियों के साथ आरकेस्ट्रा की धुनों से गदगद होकर नृत्य में मग्न हो जायेंगी। यह जवान शरीर एक दूसरे से मिलेंगे और आँखों में सोई हुई वासना एक अँगड़ाई लेकर जाग उठेगी।

एक लुभाना-सा शोर फैलने लगा है। इन्द्रधनुष सी रंगीनी उमड़ी पड़ती है। खूबसूरत चेहरे, रंगीन सैंट में बसे सरसराते हुए मूल्यवान वस्त्र, बिखरे-बिखरे सुगंधित तेलों की हल्की सी गंध लिए बाल, जो 'ड्रीमलैंड' के इलैट्रक फैन की हवा से रेशम के तारों की तरह उड़ने लगते हैं, मूल्यवान सूट पहने हुए मर्दाना शरीर, शोख टाईयाँ, कीमती ज़ेवर, सुगन्ध, क्रीम और पाउडर की मोटी तहें,—बात-बात पर अकारण फूट पड़ने वाले ठहाके—यह हंसी, यह मुस्कान, यह जीवन, यह पाऊडर की मोटी तहें—यह कोमल और नाज़ुक हाथ अपने प्रेमी की ओर इस तरह से क्यों बढ़ते हैं, अच्छे भावों से प्रेरित होकर क्यों नहीं बढ़ते, इन प्यार के शब्दों में खोखलापन क्यों है? यह सब एक विद्युत शक्ति के दास क्यों हैं? इन मुस्कुराहटों से सितारों की नज़ाकत और चाँदनी में झूमते हुए समुद्र की लहरों का सौंदर्य कौन छीन ले गया? इस हंसी में पराजित जीवन की उजड़ी हुई कामनाओं का भोग क्यों है?

स्पष्ट है कि इस वातावरण में किसी वस्तु की कमी है। कोई चीज़ घट रही है। लुभाने रंगीन रेशम, 'ईवनिंग इन पैरिस' और कोमल पाऊडर की तहों में कोई चीज़ दब कर रह गई है। उसे तलाश करूं? जी चाहता है कि पाऊडर की तहों को खुर्च डालूं। इन फैशनेबल मकड़ियों ने जो चारों ओर रेशमी जाल बुन रखे हैं तहस-नहस कर दूं ताकि 'ईवनिंग-इन-पैरिस' की खुशबू के नीचे जिस सड़ांध को छिपाने की कोशिश की जा रही है, वह बाहर फूट पड़े! इस वातावरण में

तो दम घुट सा रहा है ।

हाल में सिगरेट का धुआँ फैल रहा है । बातों, कहकहों, चम्मचों और प्लेटों का शोर अब कानों को खाने लगा है । सुन्दर, रंगीन कपड़े, मूल्यवान आभूषण और कृत्रिमता आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही है ।

मैंने एक हल्के से धक्के से शीशे की खिड़की खोल दी है और बाहर देखने लगा हूँ—कई घंटों तक बरस चुकने के पश्चात् अब वर्षा थक गई है । आस-पास दूर तक सारी चीजें धुलकर साफ हो गई हैं । मकानों और दुकानों के छज्जे, काली नागिन के समान कोलतार की श्याम रंग सड़क, पीले रंग की भव्य सिनेमा बिल्डिंग, सड़क पर ठहरी हुई रंग बिरंगी कारें, सब धुलकर दुल्हन की तरह निखर गई हैं ।

पथिकों का आवागमन फिर से आरम्भ हो गया है । इन सब पर अस्त होते हुए सूर्य की भीगी किरणें, मनभावनी कोमल किरणें, मानों अपनी आंचल सुखा रही हैं । धूप की ऐ प्यारी किरणो ! तुम हर सुबह कहाँ से आती हो और फिर कहां को शाम होते ही चल देती हो ?

किरणें उत्तर नहीं देतीं, केवल मुस्कुराती हैं, हौले-हौले.....जैसे दुल्हन हों..........शायद सुहाग रात मनाने जा रही हों..........

फुटपाथ पर बूढ़ा रिफ्यूजी, जो देर से अपना सामान लिए एक दुकान के छज्जे तले रुका हुआ था, बांस के टेढ़े स्टेंड पर नये साल के कैलन्डर सजाने लगा है । वह लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए ज़ोर ज़ोर से हाथ हिलाकर चिल्लाने लगा है, "नये साल का कैलन्डर, —साढ़े छः आने में ! पंडित नेहरू, मौलाना आज़ाद साढ़े छः आने में ! महात्मा बुद्ध साढ़े छः आने में ! सुरैया, ताजमहल,

आइजर्स साढ़े छः आने में। ले जाइये नये साल का कैलन्डर......"

"बेवकूफ रिफ्यूजी, अभी कोई पुलिस का सन्तरी आयेगा और तुम्हे धक्के देकर हवालात ले जायेगा। समानता की दुम, तुमने हर चीज़ एक ही भाव बेचनी आरम्भ कर दी है!"

कई घंटों तक वर्षा होती रही है जिसके कारण शरणार्थी के कैलन्डर इतनी संख्या में भी नहीं बिक सके हैं कि उनके कमीशन से वह आज चावल ही ले जा सके। कल जब उसके हरे खेतों में ज़िंदगी लहरें मार रही थी, कोई उससे चावल खाने को कहता तो वह उसे अपनी इच्छा का अपमान समझता, उसे गाली समझता, किन्तु आज उन ही चावलों के केवल कुछ एक दानों के लिए वह दिन दिन भर और रात गये तक गला फाड़ता है। उसके दो छोटे-छोटे पोते जो कल तक केवल दूध ही पिया करते थे, एक बूढ़ी पत्नी और उसका स्वयं का पेट, इन्हीं दानों की प्रतीक्षा में हैं। आज भी सम्भवतः आधे पेट पर ही बस करना पड़ेगा क्योंकि आज भी कमीशन में इतने पैसे न मिल सकेंगे जो चार पेटों के लिए पूरा ईंधन इकट्ठा कर सकें। किन्तु पचपन वर्ष का बूढ़ा दिल निराश नहीं। वह आज भी प्रसन्न है, उसकी निगाहें भविष्य की ओर उठी हुई हैं। वह परिस्थितयों से निराश नहीं।

जब वह दंगों से लुट-पिटकर एक काफिले के साथ चल पड़ा। उसके साथ उसका जवान लड़का था, दो पोते, एक बूढ़ी पत्नी और हज़ारों लुटे-पिटे लोग थे, बूढ़े—बच्चे, युवक, स्त्रियां, पुरुष, हृष्ट-पुष्ट सुन्दर लड़कियाँ...घाव...आँसू...रक्त.....पीप! किन्तु इन सब चीजों से बढ़कर एक और चीज़ थी। उसके मन की फुलवाड़ी में एक कली महक रही थी, जैसे घने अंधेरे में प्रकाश की एक लकीर थरथरा रही

हो। रास्ते में बड़े-बड़े कष्ट आये, किन्तु वह कली महकती रही। गर्मी, धूप, लगातार थकान, और तड़पा देने वाली भूख ने उसके कदमों की शक्ति भी छीन ली थी, किन्तु वह कली वैसी की वैसी महकती रही। एक दिन अकस्मात् ही काफिले पर आक्रमण हुआ। उसने साहस के साथ डटकर सामना किया। उसने अपनी आंखों से अपने जिगर के टुकड़े, जवान बेटे की गर्दन को तन से अलग होते देखा, फिर भी वह कली वैसी की वैसी महकती रही। फिर वह एक अंधेरे पहाड़ी नाले में दो दिन और तीन रात अपनी पत्नी और दो गुलाब से पोतों को लिए छुपा रहा, किन्तु मन की फुलवाड़ी में वह कली वैसी महकती रही। उसने सोचा था, भारत पहुँचते ही उसके सहधर्मी उसका स्वागत करने को दौड़ पड़ेंगे, उसको गले से लगायेंगे, उसके तलों पर पड़े हुए छाले जो अब घावों में परिवर्तित हो रहे थे, उन पर मरहम के फाहे रखे जायेंगे। उसने सोचा था, दूध और शहद की नहरें बह रही होंगी फर्श पर नर्म-नर्म मखमल बिछे हुए होंगे कि जिन पर पाँव रखते हुए भी झिझक महसूस होती है।

किन्तु सीमा पार करने के बाद यह सब स्वप्न प्रमाणित हुआ उसने अत्याचार और बेदर्दियों को वैसे का वैसा देखा—उस समय उस कली पर एक हल्की सी उदासी, एक धूल सी छा गई। किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् ही उसने उस धूल को झाड़कर फेंक दिया और कैम्प की आत्मा को निर्जीव करने वाली रोटियों पर थूककर इस शहर में आ गया। और अब "नये साल के कैलन्डर ले जाइये—साढ़े छः आने...साढ़े छः आने में......."

आज रविवार है। आज वह कुछ अधिक की आशा लेकर आया वह कई सप्ताह से हर रविवार पर आशा रखे बैठा

रहता है, ताकि अपनी बूढ़ी पत्नी, के लिए जिसने जीवन के तीस वर्ष उसके साथ तनमन से गुज़ारे हैं, चार गज़ लट्ठा खरीद सके, लट्ठा न सही मारकीन ही सही। वह सात दिनों में सैंकड़ों बार बुढ़िया को विश्वास दिलाता है कि रविवार को ज़रूर कपड़ा ले आयेगा उसके लिए। किन्तु वह रविवार नहीं आता, जिसकी उसे प्रतीक्षा है—वह रविवार, जो उसकी मुट्ठी में इतने पैसे दे सके कि वह चार गज़ लट्ठा नहीं तो मारकीन ही खरीद सके। और मजबूर होकर एक ही शलवार में वे दोनों गुज़ार कर रहे हैं। प्रातःकाल जब वह जीविका के दुःख का भारी बोझ उठाये घर से निकलता है तो बाहर से दरवाज़े के अन्दर हाथ डालकर कहता है, "दे जल्दी। बहुत देर हो गई है, तीखे की मां, जल्दी कर।"

उत्तर में तीखे की मां उसे अपनी शलवार पकड़ा देती है। बूढ़ा खड़ा-खड़ा शलवार पहनकर गमच्छा अंदर फेंक देता है। और कुछ कहे बगैर चल पड़ता है। उस समय उसकी आँखों में रक्त की एक बूंद कांप उठती है। आन्तरिक उथल-पुथल से चेहरा काला पड़ जाता है और ऐसा लगता है जैसे उसके दिल में एक भट्टी अकस्मात् ही सुलग उठी है। किन्तु वह किसी से शिकायत नहीं करता और चुपचाप रविवार की प्रतीक्षा में बाज़ार की ओर को बढ़ जाता है, जहाँ वह अपने दुःखों का बोझ पटक देता है और शाम को जब वापिस आता है तो बाहर से आवाज़ देता है—"तीखे की माँ, बहुत देर होगई जल्दी कर।"

तीखे की मां जो कई सप्ताह से दिन भर अपने पोतों को लिए पड़ी रहती है या फिर द्वार की आड़ लेकर पथिकों को तका करती है, धीरे से हाथ बढ़ाकर गमच्छा बाहर फेंक देती है, जिसको पहनकर बूढ़ा फिर शलवार लौटा देता है।

"तीखे की मां, अब के रविवार को अवश्य अच्छा कमीशन मिलेगा।"

तीखे की मां कुछ नहीं कहती और चुपचाप नल पर पानी लेने चल देती है। इस प्रकार एक ही शलवार से दोनों की गुजर हो रही है।

बूढ़ा शरणार्थी वचन में ही नहीं, कर्मक्षेत्र में भी समानता को मानता है।

साढ़े छः आने पंडित नेहरू! नये कैलन्डर! ताजमहल साढ़े छः आने! ले जाइये, नये साल का कैलन्डर...महात्मा बुद्ध......!

महात्मा बुद्ध जिनके होंठों पर एक अलौकिक मुस्कान चमक रही है, आंखें बंद हैं, किन्तु ऐसा लगता है जैसे एक एक चीज़, एक-एक बिन्दु को देख रहे हैं, लाल चेहरे पर पवित्रता, एक स्वच्छता दिखाई देती है। पास पहुँच कर मैंने धीरे से कहा, "राजकुमार, क्या तुम्हें शान्ति मिल गई?"

राजकुमार कुछ नहीं बोलता। उसके होंठ मौन हैं। किन्तु उसके चेहरे पर एक रंग आकर चला गया है। मैंने बिल्कुल धीरे से उसके कंधे को थपथपाया।

"सिद्धार्थ, आंखें खोलो............क्या तुम्हें वह रात याद है जब यशोधरा गहरी नींद में सोई हुई थी और उसके चेहरे पर प्रकाश की एक किरण मंडरा रही थी, और उसके होंठों पर एक ऐसी मुस्कान थी जिसे जीवन कहते हैं.....अभिमानी राज कुमार! क्या तुम्हें वह मुस्कान, वह जीवन याद है? वह यशोधरा याद है? वह प्यार, वह सत्य याद है? या सब भूल गये?"

होंठों में एक हल्की सी कम्पन उत्पन्न हुई, "नगर-नगर भटकने

वाले कहानीकार तुम यहां से चले जाओ। मेरी शान्ति को मत भंग करो............"

"किन्तु राजकुमार! जीवन मृत्यु की शान्ति से नहीं, जीवन की पूजा से है।"

"बस बस, अब तुम यहाँ से चले जाओ............यहां से चले जाओ..........."

"जाता हूं सिद्धार्थ! किन्तु अब तुम घर लौट जाओ। बहुत देर हो चुकी है। कोई समय के पथ पर दृष्टि गाड़े शताब्दियों से प्रतीक्षा में बैठा है।'

"कौन.....कौन है वह?"

"शान्ति की खोज में भागे हुए राजकुमार, कितने भोले बनते हो। वह यशोधरा है। लौट जाओ सिद्धार्थ! यशोधरा जीवन के रूप में अब भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।"

नये साल के कैलन्डर साढ़े छः आने! नये साल का कैलन्डर ले जाइये महात्मा बुद्ध!........ताजमहल......शाहजहाँ!........

महल का एक बड़ा कमरा जो कीमती ईरानी कालीनों, फरट क्लास पर्दों, चीनी गुलदानों और विभिन्न प्रकार की चीजों से सुसज्जित है। एक पलंग पर कोहनी का सहारा लिए शहनशाह शाहजहाँ लेटे हैं। पास ही आबनूस की मूल्यवान कुर्सी पर मखमल का लबादा पहने शाही हकीम शहनशाह की नब्ज़ देख रहे हैं। आस पास कुछ सरदार हाथ बाँधे, सिर झुकाये खड़े हैं। पलंग के पीछे मयूर के लम्बे लम्बे पंखे लिए दासियां खड़ी हैं। दासियों के पीछे चार श्वेतधारी मुल्ला कुरआन पढ़ने में मग्न हैं। कमरे में एक लम्बे लुबानदान से गाढ़ा पेच खाता हुआ धुआँ उठ

रहा है। शाहजहां के चहरे पर उदासी छाई है। रंग पीला और होंठों पर पपड़ी जमी हुई है। चारों ओर गहरी चुप्पी है। केवल शहनशाह की लम्बी साँस ठहर ठहर कर चल रही है। दबे दबे पावों से भूल्यवान कालीनों पर, जिनपर ज़री का बहुत बारीक काम किया हुआ है, चलते हुए पास पहुँच कर मैंने कहा, "आलम पनाह !"

"कौन है ?" बड़े धीमे स्वर में उत्तर मिला।

"जहाँपनाह ! मैं हूं, एक कहानीकार !"

"कहानीकार ! क्या मतलब ?" शहनशाह के माथे पर बल पड़ गये। पास ही खड़े एक सरदार ने कहा, "दास्तां-गो, आलमपनाह !"

"दास्तांगो, यूँ कहो। ओह, दास्ताँगो बड़े मौके पर तुम आये। मेरा दिल बहुत उदास है......इसे बहलाओ.....कोई किस्सा......."

"नहीं जहांपनाह ! मैं महलों का नहीं, झोंपड़ियों का कलाकार हूं। गुस्ताखी मुआफ, आलम पनाह, मेरे किस्से आपको बहलाने के बजाये और बेचैन कर देंगे।"

"तो फिर क्यों आया है गुस्ताख ! एक दम....."

"मैं केवल ताजमहल का खर्चा जानने के लिए उपस्थित हुआ हूँ, जहां पनाह !"

"ताज ! मेरी उम्मीदों का गहवारा, मेरे लाजवाल (स्थाई) प्यार की यादगार ! मगर तुम खर्चा क्यों जानना चाहते हो, दास्ताँगो ?"

"वह केवल इसलिए कि एक बेवकूफ रिफ्यूजी इसे साढ़े छः आने में बेच रहा है।"

सारे महल में एक शोर-सा गूँज उठा—"कोई है ? इस गुस्ताख की जुबान निकाल कर बाहर फेंक दो।"

कुछ दूरी पर चल रही है। लड़का श्वेताम्बर धारी पुरुषों के पास जाकर बड़े प्यारे अंदाज़ में कहता है, "पालिश कर दूं साहब? आपके जूतों पर पालिश कर दूं। एक दम से चमका दूंगा......"

यह सुनकर सिनेमा गेट के साथ वाली बड़े बड़े दर्पणों से सजी हुई पान की दुकान के समीप खड़े गुजराती सेठ की दृष्टि एक बार अपने जूते की ओर को जाती है—दूसरी बार उस मैले कुचैले बच्चे की ओर, बच्चे की आंखों में न जाने कहाँ से आशा की चिनगारी चमक उठती है। उसने बड़ी आशा से हाथ बढ़ाया।

"हुजूर, कर दूँ पालिश?"

सेठ ने पैर इस प्रकार पीछे खींचा जैसे कोई साँप बढ़ा आ रहा हो।

"अबे हट हट, साला देखता नहीं? मेरा जूता मैला हो जायेगा। हम रोज सवेरे आप पालिश करता है। भाग-भाग साला!"

—"भाग साला, देखता नहीं आजकल कोयले के व्योपार में हर मास घाटा हो रहा है। कलकत्ते की तीन बाइयों को बाध्य हो छोड़ देना पड़ा है। वर्ष भर में कार के केवल तीन माडल बदले जाते हैं। अपने हाथों से पालिश करना पड़ता है। और तू चाहता है गुजराती सेठ एकदम से कंगाल हो जाये?"

लड़का हट गया है और गाड़ी में ऊंघते हुए शोफर की ओर आशापूर्ण दृष्टि से देखता है, जिसके जूते शायद छूने से मैले न हो जायेंगे। किन्तु उसे ऊंघता हुआ देख कर आगे बढ़ जाता है।

"बूट पालिश, बूट पालिश......", जैसे बुलबुल चहक रही हो। "बच्चे तुमने इतनी छोटी अवस्था में ही क्यों जीवन के झमेले को अपना लिया है? कम उमर बच्चे, तुम स्कूल क्यों नहीं जाते?"

"आपके भेजे पर पालिश कर दूं साहब ?"

"अरे लड़के, तू बड़ा उद्दंड है ।"

परछाई की तरह साथ रहने वाली अधेड़ स्त्री कुछ निराशा-सी लड़के की ओर देख रही है ।

"यह मेरी मां है । यह मेरे बाप की खोज में प्रतिदिन मेरे साथ शहर आया करती है । यह पगली है । मेरा नन्हा भाई बीमार है, यह उसकी भी चिन्ता नहीं करती ।"

जब गांव में अकाल सा पड़ने लगा और कई कई दिनों तक चावल का मुंह तक देखना कठिन हो गया । चावल, जिसे उसने और उसके पति ने अपने हाथों बोया था, सींचा था, काटा था, और जो अब उसके अधिकार में नहीं था, गांव के शताब्दियों पुराने लुटेरों के हाथों में था, चावल, जो केवल एक स्मृति, एक स्वप्न बनकर रह गया था और जो छोटे-छोटे बच्चों का क्रंदन भूख से साँय-साँय करते हुये कानों में शीशा पिघलाकर डालने लगा, उस समय सुनी सुनाई बातों में आकर एक दिन उसके पति ने उससे कहा, "क्यों न शहर चला जाये, जहां कि कारखानों में उतनी मजदूरी मिल जाती है कि एक आदमी कमाये और तीन खायें ।" यह सुनकर उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं । पहले तो उसे विश्वास ही न हुआ कि संसार में कोई ऐसा भी स्थान हो सकता है कि जहाँ एक आदमी की कमाई में तीन आदमियों को खाने को मिल जाये । किन्तु जब पति ने अच्छी तरह विश्वास दिलाया और गाँव के दूसरे लोगों के किस्से सुनाये जो शहर में मौजा उड़ा रहे थे, तो वह खुशी से झूम उठी और अपने तीसरे अर्थात् सबसे छोटे बच्चे अर्थात् जो जीवन में कड़ी धूप बन कर छाया था, को चूम लिया । और उस दिन मक्कई के ढेर सारे डण्ठल लेकर वह पति के साथ शहर की ओर चल पड़ी ।

किन्तु शहर पहुँचकर वह बहुत उदास हुई अर्थात् चालीस मील जिस आशा को सीने से लगाये वह चली आ रही थी, वह निराशा की आग में जल गई—फिर अनथक दौड़ धूप के बाद दम्पत्ति को एक कारखाने में जगह मिल गई। किन्तु दिन भर कड़ी मेहनत के बाद भी पेट भर खाना न मिलता। फिर भी वह प्रसन्न थी। उसके होठों पर कभी शिकायत न आई थी। उसकी आंखें कभी गीली न हुई थीं।

फिर ऐसा हुआ कि गांव के लोग बड़ी संख्या में शहर आने लगे और कारखाने के गेट पर झुंड के झुंड मंडराते रहते। और इस प्रकार निश्चित मजदूरी में कमी होने लगी और होते होते इतनी रह गई कि तीन कमायें तो एक का भी पेट न भरे, तो अचानक कारखानों में हड़ताल हो गई।

और चावल के दाने एकदम से छिन गये। और नरक की आग और तेज़ होती गई।

भूखे बच्चों की चीखें बढ़ती गईं। हड़ताल के काल में बढ़ती होती गई। उसके कदमों में लड़खड़ाहट आती गई। और जब डूबते को तिनके का सहारा भी न रहा तो एक रात जब वह सो रही थी, बच्चे चीख चीख कर थक गये थे और अपनी माँ के शरीर से चिपटे पड़े थे और आने वाली सुबह को हड़ताल करने वालों की ओर से एक जलूस निकलने वाला था, तो उसके साँय-साँय करते मस्तिष्क में जाने क्या समाया, न जाने क्या सोचकर वह बहुत चिन्तित हो उठा। उसी रात को उसके लड़खड़ाते हुए कदमों ने शहर छोड़ दिया।

फिर कलकत्ते जाकर उसने एक जूट की मिल में नौकरी कर ली। किन्तु अभी नौकरी के दस ही दिन बीते थे कि छटाई हुई और वह फिर बेकार हो गया। कई सप्ताह आवारा फिरने के पश्चात् एक दिन उसने सोनागाच्छी में अपने आत्माभिमान को मौत की नींद सुला

दिया और अब रात रात भर वैश्याओं की दलाली करता है और दिन भर मदिरा के नशे में डूबा वहीं पड़ा रहता है, और अश्लील फिल्मी गीत गाता रहता है और उसकी पत्नी कारखाने से छुट्टी मिलने पर हर शाम अपने लड़के को पालिश का बक्स देकर उसके साथ-साथ पति की खोज में सड़कों पर घूमा करती है।

"और चाय लाऊं हुजूर ?" बैरा फिर मुझे ड्रीमलैन्ड के वातावरण में खींच लाया है।

"हां ले आओ।"

'ड्रीमलैन्ड' में शोर वैसे का वैसा चल रहा है। प्लास्टिक की सुन्दर स्त्रियां अपने चिकने-चुपड़े झूठे चाहने वालों के साथ झूठे प्रेम की झूठी बातों का झूठा दफ्तर खोल कर पागल हुई जा रही हैं।

"डार्लिंग, मैंने तुम्हारे वियोग में आंसुओं की नदियां बहाई हैं। देखो, अभी तक मेरी आंखें सूजी हुई हैं।"

"मैंने एक-एक दिन एक-एक शताब्दी करके बिताया है। मैंने कई बार आत्महत्या का भी फैसला कर लिया था, डियर।"

"ओहो—हो............डार्लिंग यूं न कहो। मुझे गश आ जायेगा। मैंने तड़प-तड़पकर जो तीन महीने दार्जिलिंग में बिताये हैं......!"

निर्जीव, खोखले, झूठे-झूठे आँसू, झूठी-झूठी मुस्कुराहटें.....सारे ड्रीमलैन्ड में घुटन सी छा रही है। आर्केस्ट्रा पर एक नई धुन आरम्भ हो गई है। आस-पास बैठे हुए लोगों के पैर थिरक रहे हैं। थोड़ी देर में नृत्य आरम्भ हो जायेगा। शरीर से शरीर मिलेंगे। और सारे हंगामे मदिरा और नृत्य के नशे में मस्त होकर बार के अंधेरे कुहरों में सो जायेंगे। और झूठे जीवन के झूठे चिन्ह खोये हुए बगूलों के समान खोजने पर भी न मिलेंगे। शराब के नशे में धुत जोड़े जब

रात गये घर जायेंगे, और रात दिन नई मील, नई कान, नई बिल्डिंग और ब्लैक मार्केट की नई स्कीम बनाने वाले माता-पिता का जब उन्हें विचार आयेगा और खाली जेबों की ओर हाथ जाये, तो वह सिर पर पाँव कर भागेंगे। पाउडर क्रीम की तहों के नीचे छुपे हुए चेहरों पर मौत की सी उदासी छा जायेगी। और उस समय झूठे प्रेम की हृदयग्राही बातों, वियोग के दुःख, जुदाई में बहाये आँसुओं की बाढ़-सब कुछ स्वप्न बन चुके होंगे। और प्लास्टिक की नारियाँ रसगुल्ले और शराब के स्वाद से वंचित होंठों पर जीभ फेर फेरकर अपने प्रेमियों की उकताई हुई भुजाओं का सहारा लिये सुन्दर कारों में बैठकर अपने घरों को चल पड़ेंगी।

दिल वास्तव में ही उदास होता चला जा रहा है। नासमझ दिल को क्या समझाऊं ? यह कम्बख्त ड्रीमलैन्ड में भी जीवन खोजता है!

मैंने फिर बाहर देखना आरम्भ कर दिया है। जहां अधेड़ स्त्री अपने दुःखों का बोझ लिये अपने अभिमानी पति की खोज में एक नाली के पास बैठी हुई है—

.......ज़िन्दगी से भागे हुए सिद्धार्थ! घर लौट आओ। यशोधरा ज़िंदगी के रूप में आज भी तेरा इन्तिज़ार कर रही है।

छेदी लाल गुप्त

स्वप्न और सत्य

युग की आवाज़

छेदी लाल गुप्त

स्वप्न और सत्य

स्त्री असाध्य साधनाओं के फलस्वरूप पुरुषों को पत्नी के रूप में मिलती है। मर्त्य-लोक में, वट-वृक्षों के माया जाल में आजीवन एकांतवास करने वाले तपस्वी विश्वमित्र को उनकी तपोसाधना पर प्रसन्न होकर देवलोकवासी इन्द्र ने अप्सरा मेनका को उपहार स्वरूप भेंट किया था। तब से आज तक स्त्री अटूट रूप से अपने परम कर्त्तव्य का पालन करती आ रही है।

स्वरूप, मेरा एकांतप्रिय और एकमात्र ऐसा मित्र है, जो अपने छोटे से—यही दो प्राणी के—परिवार में मुझे उदारतापूर्वक स्वीकार कर चुका है। किसी तरह यह कोई नहीं समझ सकता कि मैं स्वरूप से अलग, या जाति-वर्ण से भिन्न कोई हूं। लगातार कई वर्षों से, जब से उसकी पत्नी, मेरी कमला भाभी कलकत्ते आयी हैं तब से आज तक यह महसूस करने का मौका नहीं मिला कि वे हमारे अपने नहीं हैं। गृहस्थी के हज़ार बाधा-विघ्नों के होते हुए भी मुझे इस बात का आभास नहीं होने दिया गया कि हफ्ते-हफ्ते सरकारी नियम के अनुसार राशन लाना पड़ता है। कमरे के किराये के लिये शाम-सुबह मकान मालिक की आँखों में लाल डोरे खिंचे रहते हैं, भौंहें हमेशा तनी रहती हैं। शाक-सब्जी के बाजार में आग लग गयी है। आदमी के ख़रीदने

की शक्ति ह्रास हो गयी है। तात्पर्य यह कि कमला भाभी के सद्व्यवहारों ने मेरे मस्तिष्क पर प्रभाव डाला है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि स्त्री असाध्य साधनाओं के फल स्वरूप पुरुषों को पत्नी रूप में मिलती है।

वर्षों से एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए मेरा मन कभी-कभी इस बात के लिये व्याकुल हो उठता है कि मैं कितना अभागा हूँ जो अपना घर-गृहस्थी भी नहीं बसा पाता।

किन्तु मुझे यह नहीं मालूम था कि संसार के लोग—रात के अँधेरे की कलुष को दिन के प्रकाश के आवरण में छिपाते हैं। स्त्री के दो रूप हैं, एक निर्मल गंगा की तरह पवित्र, विशाल आकाश की तरह उदार, तथा चन्द्रमा की शीतलता की तरह शान्त और सुखद तथा दूसरा निस्तब्ध काली रात की तरह भयंकर कलुषपूर्ण, और दहकते सूर्य की तरह ज्वालामय विनाशकारी।

मैं इस बात से भी अनभिज्ञ था कि इस स्त्री के जीवन का एक अन्तराल भी है जहाँ वह पुरुषों को नारकीय यातनाओं का भोग कराती आ रही है।

एक बात पर तब से अब तक मैं लक्ष्य करता आया हूँ कि कमला भाभी के यहाँ आ जाने पर स्वरूप दिन प्रति दिन कुछ बदलता गया है। उसके चेहरे पर हर क्षण प्रतिभासित होने वाली प्रसन्नता आषाढ़ के काले मेघ में जैसे छिप गयी है, उसकी उमंगें लज्जा से किसी गहरी गुफा में मुँह छिपा कर बैठ गयी हैं, उसकी स्फूर्ति कहीं ऐसी जगह पहुंच कर खो गयी मैं जहाँ से कभी, कभी नहीं लौट कर आ सकतीं। इसका एकमात्र कारण कमला भाभी है—सुन्दर, सलोनी, देवी-स्वरूप कमला भाभी!

आजकल स्वरूप ठीक परिवार के उस बूढ़े सदस्य की तरह हो गया है, जिसके कन्धे पर बैलों की तरह हल के जूए पड़े हुये होते हैं और नाक में नुकेल। पड़ोसी बूढ़े खोमचेवाले की तरह झुँझलाना सीख गया है जो हर ऊंची-नीची बात पर अपना सिर आप पटकता रहता है, जो घर के छोटे-बड़े किसी की भी सहानुभूति का पात्र नहीं है।

खोमचेवाले बूढ़े में और स्वरूप में इतना अन्तर, ज़रूर है कि वह आज भी जीवन को उन्नत बनाने वाली आकाँक्षा को आश्वासन की हौली-हौली थपकियों से सहलाता आ रहा है। अनपढ़ खोमचेवाले की तरह वह भविष्य से निराश नहीं हुआ है, किन्तु यह भी असत्य नहीं कि वह महत्त्वाकांक्षी अधिक हो गया है। सक्रियता के सम्पुट में महत्त्वाकांक्षा को विकसित करने की शक्ति खो कर सम्भवतः वह ऐसा हो गया है।

जिस प्रकार उसके दफ़्तर का जेनरल मैनेजर इस बात को सह नहीं सकता कि वह लेजरों पर झुका रह कर कविताओं की पंक्तियाँ नोट करे, उसी प्रकार कमला भी यह बर्दाश्त नहीं कर सकती कि स्वरूप उसकी व्यवस्था, उसके शासन और सम्मान की उपेक्षा कर भावनाओं के रंगीन पंखों पर काव्य लोक में विचरण करे।

कमला स्वरूप की असाधारण प्रतिभा को निर्मम जीवन की कठोर व्यवस्था के आगे कोई महत्त्व देना नहीं चाहती।

कमला वर्त्तमान समाज की विषमता की मूर्तिमान प्रतीक है। इस में उसका कोई दोष नहीं। वास्तव में दोष तो है दुनिया के उन विचारकों का जो मनु की सामाजिकता को आज भी स्वीकार करते हैं

मैं भाभी को कैसे यह कहूँ कि अनभिज्ञता में वह एक बड़ा भयंकर अपराध कर रही है—तुम पर तो भाभी क्रिमिनल कोर्ट में मुकदमा दायर होना चाहिये। और किस अधिकार से मैं उसे ऐसा भी कहूँ, संसार के आगे नारी का ऐसा भयंकर स्वरूप रखूं जो हत्यारी हो, जिसके सिर पर एक कवि की हत्या का दोष हो।

जब मेरे मुँह से ऐसे शब्द वह सुनेगी, तब उसे काठ मार जायेगा, वह बर्फ की तरह जम जायेगी या उसके पैरों के नीचे से धरती खिसक जायेगी।

उसने ऐसा क्या अपराध किया है ? इस प्रश्न को यदि मैं महत्व नहीं दूं तो क्या बिगड़ जायेगा जब कि अनेकों कमलायें इस प्रकार की हत्या में संलग्न होने को बाध्य हैं।

अव्यवस्थित जीवन व्यतीत करते-करते सम्भवतः मनुष्य का क्रिया-कलाप भी विश्रृंखल हो ही जाता है जैसा मैं हो गया हूँ। उसके कमरे में बैठे-बैठे यह सब सोच रहा था। भाभी चाय बनाने रसोई घर में गयी हैं, अभी दफ्तर से स्वरूप भी आता ही होगा। इसी प्रतीक्षा में बैठा-बैठा स्वरूप की कविताओं की कापी उठा ली। पुरानी कविताओं वाले पन्ने उलट डाले। उन कविताओं में सिवाय नारी की कमनीय काया और स्वप्नवत जीवन की लुभावनी कल्पना से मैं मुग्ध था। लेकिन मैं तो उसकी नयी रचना ढूंढ रहा था। आरम्भ से अन्त तक पन्ने उलट गया लेकिन एक भी कविता नहीं मिली। अन्त के पन्नों पर छन्दबद्ध सम-पंक्तियों की जगह टेढ़ी-बाँकी पंक्तियों में कुछ लिखा मिला—यथार्थ के बहुत करीब और कल्पना से बहुत परे:

'लकड़ी कल छट गयी

नमक नहीं है।
दूधवाला आया था
तक़ाज़ा करने,
और, रुपये को आज कल जंग लग गया
है पर यह भी सही है।'

एक दूसरे पन्ने पर गद्य में ही एक
वाक्य लिखा था:

'कमला के सिर का पल्ला कन्धे पर गिरा है, जैसे फेनिलोज्ज्वल नीले बादल को चीर कर चाँद आकाश में निकला हो—उसका मुखड़ा ऐसा ही है। उसके सिर की लटें बिखरी हैं। उसके हाथों में आटा लगा है। उसके इस व्यस्त रूप में ही लावण्य फूटा पड़ा है। सच तो है, निर्माण की देवी यदि अपने काम में व्यस्त न रहे तो क्या रूप-रचना में व्यस्त रहेगी। लावण्यमयी कमला का लुभावना स्वरूप........!'

और कापी के भीतर से एक काग़ज़ का टुकड़ा ज़मीन पर आ गिरा। मैं उसे उठा कर पढ़ने लगा। स्वरूप अपने किसी सम्पादक मित्र को कविता के तक़ाज़े के उत्तर में पत्र लिखते-लिखते अधूरा छोड़ गया है या भूल गया है। उस टुकड़े पर लिखा था:

'बहुत कोशिश करने पर भी रचना पूरी नहीं होती। कविता, कविता जैसे मुझ से रूठ गयी है और कविता को चाहिये निभृत एकांत। कल्पना समस्या का बोझ सहन करने की शक्ति नहीं रखती। वह तो फूलों से तौली जाने वाली, हवा से भी हल्की और कोमल भावनाओं को अपने पंख पर लेकर उड़ने वाली तीतरी है। है न यही बात? और यहाँ तो मित्र:

'कमला सम्मुख है खड़ी
ज़ेवर की मांग लिये
और बैठा हूं मैं उसके सामने
पति का स्वांग किये......'

इसी समय स्वरूप कमरे में आ गया। घिसे हुए सूपतल्ले वाले जूते का फीता खोलते हुए कहने लगा, जीवन की बातें :

'ज़िन्दगी के बारे में तुम्हारी क्या कल्पना है ? यही नहीं, कि हर किसी को अपनी आकांक्षाएं पूरी करने का अधिकार मिले। सुख के बारे में तुम ऐसा नहीं सोचते ? कि जो कुछ तुम्हारे चारों तरफ है वह सब का सब इतना सुन्दर सजा हुआ हो कि देखने पर दृष्टि को स्फूर्ति मिले, मन को तृप्ति प्राप्त हो और इन्सान की शक्ति उन्नत भविष्य की ओर प्रेरित करे' ?'

रसोई घर ऊपर की छत पर है और भाभी रसोई घर में थीं : सो वे दरवाजे पर आकर झांक गयीं। उन्हें इस बात का आभास कैसे मिल जाता है कि उनके 'वे' आ गये हैं। वे अब चाय बनाने में अधिक तत्पर हो उठी होंगीं। स्वरूप के कथन का बिना उत्तर दिये ही मैं यह सोच गया और स्वरूप की ओर देखने लगा। कविता की कब्र पर दर्शन की जड़ पौधे का रूप ले रही है।

वह पुनः बोला :

'हम लोगों के जीवन का कोई महत्त्व नहीं है इस संसार में, चूंकि हम लोगों के पास अमेरिका और ब्रिटेन से कारोबार करने की पूंजी नहीं है। पूंजी के नाम पर तो अपना श्रम है, रक्त है, मांस है जो अहर्निश गलता और जलता है।'

इतना कह चुकने के बाद अपनी-तिक्त आँखों को उसने मेरी ओर मोड़ा और कहा—"तुम चुप क्यों हो ?"

मैंने इसका भी कोई जवाब नहीं दिया बल्कि उसे पूर्ववत घूरता रहा।

उसके चेहरे पर आत्मग्लानि विकृत हास्य की रेखाओं में अभिव्यक्ति हुई। वह हंसा जैसे उन्माद के प्रथम चरण उठे हों।

'अब यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता—घर, द्वार, पत्नी ! यह सब कुछ एक परवशता-सा जान पड़ता है।" उसके विषादमय उच्छ्वास से कमरे का वातावरण घना हो गया। उसी उच्छ्वास के घनत्व में कमला भाभी अपने हाथों में चाय का प्याला लिये हुए प्रकट हुई और तिपाई पर कप रखता हुई बोलीं :

"मेरी ही वजह से तुम ऐसा सोच सके हो न! मेरा भाग्य ही ऐसा है, तुम्हारा दोष नहीं। जब तक पिता के घर थी, तब तक उनकी बोझ बनी रही। एक आशा थी की पति का घर अपना होता है, वहाँ मेरा अपना घर है, लेकिन यहाँ भी तो मैं बोझ बन गयी।

भाभी की कजरारी आँखें आंसुओं से गीली हो गयीं।

मैं बिल्कुल निस्तब्ध रह गया और स्वरूप का चेहरा भारी हो गया।

वह सिसकती हुई पुनः रसोई घर में चली गयीं। जब तक वह आँखों से ओझल न हो गयीं तब तक स्वरूप की अपलक दृष्टि उसका पदानुसरण करती रही फिर अचानक वह फट पड़ा—जैसे बरसात की प्रथम बदली फटती है और मूसलधार वर्षा होने लगती है या जैसे राख में दबी हुई आग को किसी ने कुरेद दिया हो, उसी प्रकार वह

बोला :

'तुम्हारी भाभी कितना गलत समझती हैं। मैं·········मैं क्या कर सकता हूँ। दफ्तर में तनख्वाह बढ़ाने की अर्जीयाँ दी गईं, तो नोटिस बोर्ड पर १३ कर्मचारियों की छंटनी की लिस्ट टंग गयी। लिस्ट में दो ही सतरों में पूंजीवाद की हालत का कितना सुन्दर काव्य लिखा था कि मन्दी की वजह से कम्पनी लोगों की तनख्वाहें घटाने पर मजबूर है। और तुम सोचो जब मुनाफे का रुपका था तब, तब किस की तिजोरी भरी ?' स्वरूप का स्वर बदला।

'मैनेजर आदर्श वाक्य का उच्चारण करता है। "तीसरी लड़ाई की प्रतिज्ञा कीजिये। क्षति की अपील पर दस्तख़त किया है या नहीं आपने ?"

और इसके बाद पूर्ववत् विवशतापूर्ण ढंग से उसने मुझ से कहा :

"प्रभाकर, क्या गरीबी पर, मजबूरी पर इसी प्रकार तानेकसी होती रहेगी ? क्या कमला कभी यह समझेगी कि उसे दुखी करने में हमारा दोष नहीं है ? घर और बाहर, दोनों जगह हमारे लिये नर्क कब तक बना रहेगा ?"

उसकी साँस की कड़ी टूटी, सम्भवतः इस आशा पर कि मैं सान्त्वना के कुछ शब्द कहूंगा लेकिन मैं निरुत्तर रहा।

और वह ठंडी चाय की प्याली उठाकर एक ही घूंट में घोंट गया तथा बोला :

'ज़िन्दगी जिहालत में बदल गयी है, गृहस्थी स्वर्ग नहीं है, कुण्ठों की जन्मदातृ है। यहाँ मेरा दम घुटता जा रहा है, चलो

मैं जल्दी से भाग आया.......बूढ़ा रिफ्यूजी वैसे का वैसा चिल्ला रहा था, "साढ़े छः आने में ले जाइये, साढ़े छः आने में । आगरे का ताजमहल, आगरे का ताजमहल साढ़े छः आने में......."

रिफ्यूजी के पास खड़ा एक दुबला-पतला थकान का शिकार आदमी चिल्ला रहा है, "बेले के हार.....नारी का सिंगार.........ले लो...... बेले....." उसके हाथ में लकड़ी का एक डंडा सा है। उसमें बेले के हार झूल रहे हैं। सफेद फूल तारों से दीख पड़ते हैं । उनकी नर्म पँखुड़ियाँ वर्षा की बूंदों से गीली हो गई हैं। भीनी सुगन्ध, एक समां, एक नशा, एक सुबह बनकर फैल रही है..., "बेले का हार, नारी का सिंगार, बेले का हार।"

रिक्शा कीचड़ उड़ाती हुई एक जी पसामने आ खड़ी हुई है। उस में से एक एक बंगाली सुन्दरी उतरी। उसके लम्बे केश एक बड़े से जूड़े के आकार में फूल से दीख पड़ते हैं। बेले के हार वाला जोर से चिल्लाया, "नारी का सिंगार, नारी का सिंगार !" बंगाली सुन्दरी हारों की ओर आकर्षित हुई। हार वाला पास आ गया। आशा-पूर्ण स्वर में पूछा, "कितने दूँ हजूर ?" स्त्री के पीछे उसका पति भी आ खड़ा हुआ। स्त्री ने पति की ओर देखा, जैसे पूछ रही हो "कितने ?" पति ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, "किन्तु तुम्हारी वेणी तो है।" स्त्री ने बालों के जूड़े पर हाथ फेरा, "हाँ हाँ, हार नहीं चाहिए। मेरे पास प्लास्टिक की वेणी है।" और आगे बढ़ गई।

हारों वाला फिर मुँह दूसरी ओर फेरकर चिल्ला रहा है, "नारी का सिंगार...बेले का हार.......नारी का सिंगार......."

"किन्तु नारी तो इस काल में प्लास्टिक की हो गई है। तू क्यों गला फाड़ रहा है बेहया ?"

वेश्या ने उत्तर में कहा, "मैं रात से भूखा हूं। मेरी पत्नी ने चौथे बच्चे को जन्म दिया है। बच्चे की माँ के लिए भी खाने को कुछ नहीं मिला। मैं दिनभर एक आटे की मिल में काम करता हूं और रात गये तक कमीशन पर यह हार बेचता हूं। फिर भी मेरी पत्नी को पाव भर दूध नहीं मिलता। आज तीन दिनों से मेरा बच्चा नंगा फिर रहा है। आठ वर्ष का बच्चा, कल तक उसके शरीर पर कुछ चीथड़े थे। परसों वे चीथड़े बच्चा पैदा करने वाली निर्लज्ज पत्नी के काम आ गए।" यह कहकर वह आगे बढ़ा...बेले का हार . . . नारी का सिंगार. . . "किन्तु नारी तो . . . . ."

धूप की कोमल लजीली किरणें अपने आँचल मुखा कर सुहाग रात मनाने चली गई हैं। सिनेमा बिल्डिंग का दूधिया प्रकाश आस पास फैल गया है, जैसे तारों की नीली लपटें बिखर गई हों। चहल-पहल में वृद्धि हो रही है......सिनेमा के आमने-सामने लोग एकत्रित होने आरम्भ हो गये हैं। एक ओर गोलगप्पे, दहीबड़े, पकौड़ियां बेचने वाले अपने खोमचे लिये बैठे हैं। शायद बुकिंग आरम्भ हो चुकी है क्योंकि सिनेमा के लाउडस्पीकर से हल्के फुल्के संगीत की ध्वनि आनी आरम्भ हो गई है। फिल्म के शौकीन तेजी से बुकिंग आफिस की ओर का जा रहे हैं। कुछ लोग सिनेमा गेट के माथे पर लगे हुए रंगीन पोस्टर को बड़े चाव और ध्यान से ताक रहे हैं, जिसमें एक युवति अपने उरोजों और रानों की प्रदर्शनी कर रही है।

कहीं से भटकता हुआ एक नई उमर का लड़का बगल में बूट पालिश का सामान लिए आ गया है। लड़का बहुत ही भोला-सा है। उसके साथ एक अधेड़ औरत है। उसे देखने से पता चलता है जैसे वह नगर की किसी मिल में नौकर है। वह स्त्री लड़के के साथ साथ

कहीं खुली जगह में टहल आयें।'

इतनी देर बाद मैंने कहा, 'भाभी......।'

मेरा वाक्य पूरा करने के लिये ही अचानक भाभी वहाँ उपस्थित हो गयीं। बोलीं :

'भाभी तो तुम लोगों की तरह घर को नर्क नहीं मानती। वह जानती है कि यह स्वर्ग नहीं है, सातवें आसमान पर नहीं। भोजन तैयार है, खा लो!'

और वह अपने आंचल को इस प्रकार कमर में लपेटती हुई चौखट से कदम बाहर निकालने लगीं जैसे वह अपनी स्थितियों से लड़ने के लिए तैयार हो रही हैं और हमें लड़ने की प्रेरणा दे रही हैं। पुनः उनके कदम कमरे में लौट आये और बोलीं, 'जिस काम के लिए मैं यहां आयी थी, देखो तो भला, भूल बैठी। हां सुनो, तुम जब दफ्तर गये थे, तब श्याम सुन्दर आये थे। प्रभा दीदी को बच्चा हुआ है। उनके घर चले जाओ, और उनको यहाँ भोजन करने के लिये कह दो। प्रभा दीदी तो अस्पताल में हैं। होटल में खाने की क्या जरूरत है।'

'ओह!' हम दोनों के मुंह से हर्षोल्लास की यह ध्वनि एक साथ निकली।

स्वरूप बोला—'तो श्याम सुन्दर बाप बन गया।'

वह खुशी से 'हो हो' कर हँस उठा। उसकी हंसी का क्रम जब अपनी सीमा पार कर चुका तब वह बोला : 'उसे बुला कर लेता ही आता हूं, तब सब लोग एक साथ खाना खायेंगे।'

हम दोनो सीढ़ियों पर उतर गये ऊपर से कमला भाभी ने रोक कर कहा :

'और सुनो; राशन कार्ड भी उठाते आना। एक दिन की बात हो तब तो बिना राशन कार्ड के भी चल सकता है। अभी प्रभा दीदी तो कई दिनों तक अस्पताल में रहेंगी। और देखो, दो मिनट ठहर जाओ मैंने टोक दिया है न ! समय को कौन जानता है।'

हम दोनों नीचे आँगन से ऊपर गर्दन उठाये देखते रहे-भाभी की ओर, जैसे किसान वर्षा के प्रथम मेघ की ओर देख रहा हो, अपने सुखद भविष्य की ओर।

आकाश पर सन्ध्या की घनी छाया के घूंघट से चाँद अपनी मलिन आभा बिखेर रहा है और भाभी हम लोगों की ओर मुस्कुराती-देख रही है, अपलक !

मैं सोचता हूं, चाँद और भाभी का मुखड़ा ! हंसी और रुदन जीवन का कितना मोहक खेल है।

देवेन्द्र इस्सर

अनन्नास का दरख्त

युग की आवाज

देवेन्द्र इस्सर

अनन्नास का दरख़्त

विनय मेरा दोस्त है और अपने सारे दोस्तों की तरह मैं उसे प्यार करता हूं। वह मुझे कब, कैसे, कहाँ और क्यों मिला, यह एक ग़ैरज़रूरी तफ़सील है। लेकिन जब वह मुझे मिला, तो मैं अपना घर-बार छोड़ कर जीविका की खोज में दिल्ली की तंग गलियों और चौड़ी सड़कों पर बेकार घूम रहा था और वह पानी की बोतलों में कार्बोलिक एसिड गैस भरने के कार्य में व्यस्त था। दिन भर वह घूम फिर कर बोतलें बेचता था और रात भर पलक झपकाये बिना बोतलें भरने के काम में लगा रहता था। एक बार उसकी पलक झपक गयी थी, तो गैस के ज़ोर से एक बोतल टूट गयी और शीशे के टुकड़े उसके चेहरे और बाज़ू पर जा लगे थे। उन ज़ख़्मों के निशान उसके माथे और बाँहों पर अभी तक मौजूद हैं। शायद इसीलिये वह बार बार कहा करता—"दोस्त, चौकस रहना। पलक न झपकने पाये, नहीं तो उमर भर अपने चेहरे और बाज़ू पर ज़ख़्मों के निशान लिये कहाँ छिपते फिरोगे?"

मेरे दिल्ली आने के चन्द दिन बाद ही वह भी बे रोज़गार हो गया। उन्हीं दिनों 'कोका कोला' की प्रसिद्ध फ़र्म ने अपना कारख़ाना दिल्ली में खोल दिया था और विनय के पास बोतलें भरने के जितने कीमती फार्मूले थे, सब बेकार हो गये और वह स्वयँ दिल्ली की लम्बी २ सड़कों पर रात दिन घूम घूमकर सोचने लगा कि क्यों न वह

'कोका कोला' की फर्म में नौकरी कर ले। लेकिन उसने 'कोका कोला' की फर्म में नौकरी न की। शायद उसने कोशिश की, पर जगह न मिली। जब हम दोनों की जेबें ख़ाली हो गयीं, तब हम घूमने के बजाय घण्टों एक ही जगह बैठने लगे।

एक दिन मैं बैंक स्ट्रीट पर खड़े एक पेड़ के सहारे सिर लगाकर कुछ सोचने लगाया, कि एक बूढ़े-से आदमी ने मेरे कंधों को झिझोड़ा, "यंग मैन! तुम्हें क्या तकलीफ है?"

मैं मानो किसी डरावने स्वप्न से चौंक उठा—"कुछ नहीं...वैसे ही, ज़रा थक गया था।"

विनय ने मेरे कंधों को थपथपाते हुए कहा—"यह आर्टिस्ट है और समझ रहा है कि चित्र पूरा होने से पहले ही उसके रंग ख़त्म हो गये है, इसलिए ज़रा परेशान है।"

बूढ़ा आदमी चला गया और विनय चन्द दिनों के बाद भाग्य की परीक्षा के लिये पूना चला गया।

पूना में विनय इमारतें बनवाने वाले किसी ठीकेदार के पास मज़दूरों की निगरानी और हिसाब किताब रखने पर नौकर हो गया। दो अढ़ाई महीने के बाद इमारत का निर्माण पूरा हो गया। उसका पत्र आया :—

"लेबारेटरी की इमारत पूरी बन चुकी है। मज़दूर औरतें और मर्द किसी नयी इमारत के निर्माण की खोज में बेकार घूम रहे हैं—मंगलू, मुराद, लंगाया, जोपार्मां और मैं—सब-के-सब बेकार हैं। उनके हाथ सीमेन्ट के सिलेटी रंग में डूबे हुए है। सिर के बाल मिट्टी में अटे हुए और चोटें खाये पाँव पर रिस्ते हुए ज़ख़्म! इतनी बड़ी

इमारत के निर्माण के बाद वे ऐसे दिखते हैं, जैसे भूकम्प के बाद इस इमारत के खंडहर दीख पड़ेंगे।...गुलमोहर के छोटे पेड़ लाल फूलों से लदे हुए हैं और धीरे-धीरे फूल सूखकर धरती पर गिर रहे हैं। मैं बेकार हूं, मुझे फ़ुरसत है, लेकिन गुलमोहर के फूल सुन्दर नहीं दीखते..."

मैंने उसके पत्र का कोई उत्तर न दिया। उसकी ज़िन्दगी में जो ज़हर हौले-हौले समा रहा था, उसमें मैं और अधिक कटुता शामिल नहीं करना चाहता था। कुछ ही दिन बाद उसका फिर पत्र आया। इस बार बहुत संक्षेप में लिखा गया था :—

"मेरे पास पैसे नहीं, काम नहीं और ज्यूलेट अब बहुत रात गये तक आउट-डोर शूटिंग पर जाने लगी है। तुम बहुत याद आ रहे हो और तुम्हारे बिना जैसे सन्नाटा सा छाया रहता है।"

मैंने कई बार उसे पत्र का उत्तर देने के बारे में सोचा, लेकिन हमेशा यही सोचकर रह गया कि मेरे पास उस 'यौवन जल' की एक बूंद भी नहीं है, जो उसे पिलाकर उसके होंठों की मुस्कान को ही अमर बना सकूँ। वह मज़दूर गोष्ठियों में सम्मिलित होता है, राजनीतिक सभाओं में भाग लेता है। लेकिन उसकी बेकारी उसे ऐसे गुनाह के समान खा रही है, जिसके कारण न तो वह इस दुनियाँ में खुशी से जी सकता है और न स्वर्ग की सुखद कल्पना कर सकता है और उस के चारों ओर नरक की आग के शोले साँप की तरह लहरा रहे हैं और प्रति क्षण डसने के लिए तैयार हैं। यद्यपि मैंने उसे पत्र का उत्तर नहीं दिया, किन्तु मैंने उसे अपनी कल्पना में कई बार देखा है। वह अपने कमरे में दीवार पर लटके, अपनी पहली प्रेमिका का चित्र देख रहा है, जिसमें उसकी प्रेमिका अपनी गोद में उसकी सब से छोटी भतीजी उठाये उसकी ओर मुस्कराते हुए देख रही है। वह

हमेशा उसकी ओर ऐसे ही देखती रहती है और मुस्कराती है। उसने अनेक बार चाहा है कि वह उसे इस प्रकार न घूरा करे, क्योंकि अब उसकी गोद में उसकी खूबसूरत भतीजी नहीं, बल्कि उसकी प्रेमिका की अपनी कुरूप और जन्म की रोगी बच्ची है, जो अपनी मां के जज़्बात पर टूटनेवाले सितम की कहानी बन गयी है। वह पटियाला या देहली में लालटेन की बीमार पीली रोशनी में बैठी उसे दूध पिला रही है और उस कहानी के सो जाने का इन्तज़ार कर रही है। मेरे दोस्त के सीने में एक कसक चुभती है और वह मुझे पत्र लिखने बैठ जाता है। सारा दिन धूप और धूल में मारे-मारे फिरने के बाद—उसने कई दिन से दोपहर का खाना नहीं खाया है—बाहर चाँदनी में मूँगफली के पौधों पर कोमल फूल खिल रहे है, जिन पर सुनहरे डोरे खिंच रहे है, वायुमंडल में टमाटरों की कच्ची-कच्ची सुगंध घुल रही है, भीतर सीले हुए कमरे में वह मच्छरों का भोंडा संगीत सुन-सुनकर ऊब गया है। उसकी प्रेमिका उसी तरह उसकी ओर देख रही है और मुस्करा रही है। मेरा दोस्त उस तस्वीर को खिड़की से बाहर फेंकने के लिए उठता है। उसकी आँखे आँसुओं से बोझल हो जाती हैं और वह तस्वीर को वहाँ से नहीं उठाता। उसके हृदय में अभाव का घाव सदैव हरा रहता हैं। वह चीखना चाहता है, भविष्य के स्वप्न देखना चाहता है—और धूप में वीरान सड़कों पर जीविका की खोज में घूमता है। इसी खोज में किसी उदास मोड़ पर उसे ज्यूलेट मिल जाती है-इससे आगे मैं कल्पना नहीं कर सकता। लेकिन पूरे विस्तार के साथ उसके चित्र देख सकता हूँ। शायद इसका कारण वह संयुक्त पीड़ा है, जो धीरे-धीरे हमारी रगों में समा रही है और जिसकी दवा न उसके पास है, और न मेरे पास है।

मैं इसी तरह उसके बारे में सोचता रहता। एकाएक एक दिन मुझे ध्यान आया कि मैंने उसके किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया—

यह एक ऐसी मनःस्थिति का अनुभव था, जैसे आदमी को स्वर्ग से निकालने के जुर्म में ईश्वर को हुआ होगा। मैंने उसे पत्र लिखने की चेष्टा की। लेकिन अंत में जाने किस भाव के अन्तर्गत मैं उसके काल्पनिक चित्र देखता हुआ पूना चला गया। मैं उसके कमरे में अचानक दाखिल हुआ। उसने मुस्कराने की चेष्टा की, किन्तु वह मुस्करा न सका। वह मुझ से लिपटकर रोने लगा। मेरे मन में कई प्रश्न उठे, लेकिन सब जैसे भूल-से गये।

"—मेरे दोस्त, मेरे अच्छे दोस्त! तुम यहाँ क्यों आये? तुम मेरा गला घोंट दो! मैं आत्महत्या नहीं कर सकता! मैं कायर हूँ!" —उसने मेरे हाथ अपनी गर्दन पर रख लिये। मैंने उसके गालों पर आँसुओं की बूंदों को अपनी उंगलियों से पोंछा। पास बैठा लिया। वह कुछ क्षण मौन रहा— वह बहुत कुछ कहना चाहता था, लेकिन कैसे कहे? उसके मन में ज्वार-भाटा उठ रहा था।

"—कुछ नहीं—बेकार हूँ।"—थोड़ी देर मौन रहने के बाद वह चिल्लाने लगा—"मैं यहां नहीं रह सकता! देखो, मेरे हाथों में ताक़त है, मैं जवान हूँ, सुन्दर हूं और मुझे काम नहीं मिलता! मेहनत-मज़दूरी का भी नहीं। मैं दो महीने से अपने दोस्त के यहाँ रह रहा हूं। वह मुझे अच्छे-अच्छे होटलों में खाना खिलाता है, चाय पिलाता है, जेब-खर्च देता है—लेकिन मैं यहाँ नहीं रह सकता, नहीं रह सकता! मैं मर जाऊंगा, लेकिन..."वह घुटनों में सिर देकर बैठ गया।

"—कौन है तुम्हारा दोस्त?"

"—रमता...वह साइकिलों के आर्मेचर चुराता है, उन्हीं होटलों के बाहर से जिनमें हम डिनर खाते हैं।"

मेरे दोस्त के हृदय में कांटे की सी चुभन हो रह थी। उसके हाथों में बल है, वह जवान है, वह खूबसूरत है, वह काम चाहता है —साधारण काम—साधारण मज़दूरी करने वाला काम। और उसे यह काम भी नहीं मिलता। यद्यपि उसके पास बोतलों में नये स्वाद भरने के अनेक दुर्लभ फ़ार्मूले हैं!

हम दोनों काफ़ी देर मौन रहे। मैंने उसका ध्यान मानसिक पीड़ा से बचाने के लिये कहा—"यह ज्यूलेट कौन है?"

"—एक लड़की है। ईसाई लड़की, लड़की नहीं, उसकी टूटी हुई प्रतिमा है। उसे देखकर मुझे कई बार लड़की और औरत के भेद के बीच झूलना पड़ा। अचानक यह टूटी हुई प्रतिमा मेरे निकट आयी—हाँ, मेरे निकट आयी। मैं उसके पास नहीं गया। उसने मेरे घाव पर प्यार से होंठ रख दिये। उसका रंग साँवला है और उसमें उसके चेहरे के चुभते हुए नक्श इस तरह घुले-मिले हैं कि बार-बार देखने को जी चाहता है।

"—क्या करती है?"

"—पैलेस हाइट में काउन्टर गर्ल थी।"

"—अब क्या करती है?"

उसके चेहरे पर एकदम बादल-से छा गये।

"—आउटडोर शूटिंग!"

"—आउटडोर शूटिंग?...क्या...?"

उसने मेरे चेहरे पर निगाहें गाड़ दीं"—लेकिन उसकी आत्मा मेरे लिये प्यार है...आउट-डोर शूटिंग उसका पेशा है।"

ज्यूलट के लिये उसके दिल में बहुत गहरा प्यार था। प्रेम में

कितना सुख था ! प्रेमिका की याद और मित्रता का संगीत... कितने मधुर और कटु थे वे क्षण !

"—आओ कहीं बाहर चलें...इस कमरे में तो बड़ी घुटन महसूस होती है।"— उसने कहा।

"—कहाँ ?" मैं जानता था कि उसका इशारा उस पुरानी झील की ओर था, जिसकी एक ओर से पानी गिरता हुआ बहकर नीचे नदी में मिल जाता है। रात के शायद तीन बज चुके थे, जब हम वहाँ पहुँचे। रात भरी-पूरी थी चाँद की चाँदनी में, सन्नाटा भरा-पूरा था गिरते हुए पानी के गीत में !

वह कहने लगा—"रास्ते भर मैं ही बातें करता रहा हूं। तुम कुछ सुनाओ, कैसे बीत रही है ज़िन्दगी ?"

मैं कुछ क्षण मौन रहा, इसलिए नहीं कि मेरे पास कहने के लिए कुछ नहीं था, बल्कि इतना कुछ था कि समझ में नहीं आता था, ज़िन्दगी का तार किस जगह से पकड़ा जाय।

"—रोज़गार का क्या हाल है ?" उसने पूछा।

"—चल रहा है।"

"—क्या कुछ मिल जाता है ?"

"—यही कोई सौ-पचास।"

"यानी एक सौ पचास ?"

"—बस, यही समझ लो...और कोई बात करो, दोस्त।" हम दोनों कुछ क्षण मौन रहे।

"—कुछ रोमांस की सुनाओ।"

"—हूं !"

"—हाँ, तो सुनाओ।"

मैंने एक कहानी छेड़ दी। उसमें कुछ यथार्थ, कुछ कल्पना और कुछ कथा का रंग था।

"—सुनो, मैं उसमें रुपये-पैसे का ज़िक्र बिलकुल नहीं करूँगा, नहीं तो सब मज़ा किरकिरा हो जायेगा।"—मैंने अपनी कहानी में कहीं हलके, कहीं शोख़ रंग बिखेरने शुरू कर दिये।

अपनी कहानी सुनाकर मैं चुप हो गया। यादें कम थीं, लेकिन कटु अधिक थीं।

"—लेकिन उस लड़की का क्या हुआ?"—उसने अचानक सवाल किया।

"—किस लड़की का?"

"—जिसके बारे में तुम सब कुछ छिपा गये।"

"—कौन?"

"—नाम मैं नहीं जानता। सिर्फ़ तुम्हारी आंखों में उसकी थिरकती हुई तस्वीर देख रहा हूँ।"

आत्मा में गड़ी हुई कील को जैसे किसी ने एकदम झिंझोड़ दिया हो।

"—रमनी!" मैंने कहा "...उससे मिलकर कुछ सुख का, कुछ दुख का अनुभव होता था! जैसे जिन्दगी में कोई चुटकी भरके ठहाका बिखेर दे और एकदम दूर भाग जाय। छन्न! पायल की झनकार हो और छन्न से पायल टूट जाये।"

"—वह अचानक तुम्हारी ज़िन्दगी में आयी और अचानक चली

गयी.....कैसे ?"— उसने पूछा "—क्या उसकी शादी हो गयी ? क्या उसके मां बाप राजी नहीं थे ? क्या उसने आत्म हत्या कर ली ?......क्या वह बेवफा निकली......?"

"—कुछ भी नहीं हुआ।" मैंने अपनी खाली जेबों में अपने खाली हाथ ठूंस लिये और उनकी ओर देखने लगा।

"—हूं !...तुम्हारी खालिस जिन्दी और रूमानी कहानी का परिणाम" ...—वह किसी सोच में डूब गया। वह इस दर्द को महसूस कर रहा था।

"—यह रात, यह चांदनी और गिरते हुए पानी का गीत ! काश, इस क्षण ज्यूलेट मेरे पास होती !"

वह थोड़ी देरे बाद बोला—"आज भूख बुरी तरह सता रही है... तुम चुप क्यों हो ? क्या चुप रहने से भूख मर जाती है ?"

हम दोनों एक दूसरे की ओर न देख सके और अनन्नास के पेड़ की ओर देखने लगे। अनन्नास का वृक्ष अपनी बाँहें फैलाये फलों से लदा हुआ चट्टानों में से उभर रहा था। हमारे निकट गिरते हुए पानी का गीत मद्धिम मद्धिम सुरों में बह रहा था। दूर बाँसुरी पर कोई गा रहा था। दिल का दर्द गीत में ढल रहा था। सबका गीत एक था...शायद सब का दर्द एक था।

"—बाँसुरी की आवाज़ कितनी दर्द भरी है ! शायद कोई विरह का गीत है।"—उसने कहा।

"—हाँ।"—अनन्नास का वृक्ष देखकर मुझे 'डी० एच० लारेन्स' की एक कविता याद आने लगी और मैं हौले-हौले गुनगुनाने लगा और वह सामने वृक्ष पर दृष्टि जमाये सुनने लगा:

"अनन्नास का वृक्ष काली चट्टानों की छाती चीरकर
ऊपर-ही ऊपर बढ़ता चला जा रहा है
और फलों से लदी हुई उसकी शाखें
नीचे ही-नीचे झुक रही हैं।
धरती के नीचे अनन्नास की जड़ें बहुत गहरी हैं
और उसके पत्ते प्यालों की भांति बुलन्दी पर
चाँदनी की शराब पी रहे हैं।
"—मैं अनन्नास का वृक्ष बनना चहता हूं!"

वह एकदम एड़ियों के बल खड़ा हो गया और उसने दोनों बन्द मुट्ठियां ऊपर उठायीं और हवा में लटकाकर खोल दीं। वह एक क्षण तक ऐसे ही खड़ा रहा और गिरते हुए पानी का गीत धीरे धीरे उसकी रगों में दर्द बनकर बहने लगा।

भैरव प्रसाद गुप्त

धनिया की साड़ी

युग की आवाज़

भैरव प्रसाद गुप्त

धनिया की साड़ी

बांसों की बल्लियों के अगले सिरों को जोड़ने वाली रस्सा से कमर लगाये रमुआ काली सड़क पर खाली ठेलिया को खड़खड़ाता बढ़ा जा रहा था। उसका अधनंगा शरीर ठंडक में भी पसीने से सल था। अभी अभी एक बाबू का सामान पहुँचा कर वह डेरे को वापस जा रहा था। सामान बहुत ज्यादा था। उसके लिये अकेले खींचना मुश्किल था, फिर भी, लाख कहने पर भी, बाबू ने जब नहीं माना, तो उसे पहुँचाना ही पड़ा। सारी राह कलेजे का ज़ोर लगा, हुमक हुमक कर खींचने के कारण उसकी गरदन और कनपटियों की रगें मोटी हो हो उभर कर लाल हो उठी थीं, आखें उबल आई थीं, और इस सब के बदले मिले थे उसे केवल दस आने पैसे।

तर्जनी उंगली से माथे का पसीना पोंछ, हाथ झटक कर उसने जब फिर बल्ली पर रक्खा तो जैसे अपनी कड़ी मेहनत की उसे फिर याद आ गयी।

तभी सहसा पों पों की आवाज़ पास ही सुन, उसने अकचका कर सिर उठाया, तो प्रकाश की तीव्रता से उसकी आँखें चौंधिया गयीं। वह एक ओर मुड़े मुड़े कि एक कार सर्र से उसकी बगल

से बदबूदार धूंआँ छोड़ती हुई निकल गयी। उसका कलेजा धक से रह गया। उसने सिर घुमा कर पीछे की ओर देखा। धुएँ के पर्दे से झाँकती हुई कार के पीछे लगी हुई लाल बत्ती उसे ऐसी लगी, जैसे वह मौत की एक आंख हो, जो उसे गुस्से में घूर रही हो। "हे भगवान!" सहसा उसके मुंह से निकल गया—"कहीं उसके नीचे आ गया होता तो?" और उसकी आंखों के सामने कुचल कर मरे हुए उस कुत्ते की तस्वीर नाच उठी, जिसका पेट फट गया था, अंतड़ियाँ बाहर निकल आयी थीं, और जिसे मेहतर ने घसीट कर मोरी के हवाले कर दिया था। तो क्या उसकी भी वही हालत होती? और जिन्दा रह कर दर दर ‥ ठोकरें खाने वाला और बात बात पर डांट डपट और भद्दी भद्दी गालियों से तिरस्कृत किये जाने वाला इन्सान भी अपने शव की दुर्गति की बात सोच कांप उठा, "ओफ़, यहाँ की मौत तो जिन्दगी से भी ज्यादा ज़लील होगी।" उसने मुंह में ही कहा, और यह बात ख्याल में आते ही उसे अपने दूर के छोटे गांव की याद आ गयी। वहाँ की जिन्दगी और मौत के नक्शे उसकी आंखों में खिंच गये। ज़िन्दगी वहां की चाहे जैसी भी हो, पर मौत के बाद वहाँ ज़लीलतरीन इन्सान के शव को भी लोग इज़्ज़त से मरघट तक पहुँचाना अपना फ़र्ज़ समझते हैं। ओह, वह क्यों गांव छोड़कर शहर में आ गया? लेकिन गांव में.........!

"ओ ठेले वाले!" एक फिटन के कोचवान ने हवा में चाबुक लहराते हुए कड़क कर कहा—"बांये से नहीं चलता? बीच सड़क पर मरने के लिये चला आ रहा है! बांयें चल, बांयें?" और हवा में लहराता हुआ उसका चाबुक बिल्कुल रमुआ के कान के पास से सनसनाहट की एक लकीर सी खींचता हुआ निकल गया।

ख्याल की रौ में डूबे हुए रमुआ को होश हुआ। उसने

शीघ्रता से ठेलिया को बायीं ओर मोड़ा।

लेकिन गांव में, रमुआ की विचारधारा फिर अपनी राह पर आ लगी, वह ऐसी ज़िन्दगी का आदी न थी। जोतता, बोता, पैदा करता और खाता था। किसी के सामने यों अपनी हस्ती को शून्य की सीमा तक कुचल डालने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। फिर उसे वे सब बातें याद हो आयीं, जिनके कारण उसे अपना गांव छोड़कर शहर में आना पड़ा। लड़ाई के कारण गल्ले की कीमत अठगुनी दसगुनी हो गयीं। गांव में जैसे खेतों का काल पड़ गया। ज़मींन्दर ने अपने खेत ज़बरदस्ती निकाल लिये। कितना रोया गिड़गिड़ाया था वह! पर ज़मींन्दार क्यों सुनने लगा कुछ? कल का किसान आज मज़दूर बनने को विवश हो गया। पड़ोस के घेनुका के साथ वह गाँव में अपनी स्त्री धनिया और बच्चे को छोड़ शहर आ गया। यहाँ घेनुका ने अपने सेठ से बहुत कुछ कह सुनकर उसे यह ठेलिया दिलवा दी। वह दिन भर बाबू लोगों का सामान इधर-उधर ले जाता है। ठेलिया का किराया बारह आने रोज़ उसे देना पड़ता है। लाख मुशक्कत करने पर भी ठेलिया का किराया चुकाने के बाद डेढ़ एक रुपये से अधिक उसके पल्ले नहीं पड़ता। उसमें से बहुत किफ़ायत करने पर भी दस बारह आने रोज़ वह खा जाता है। बाकी जमा करके हर महीने वह धनिया को भेज देता है। यह कोई ज़्यादा रकम नहीं होती। पता नहीं, ग़रीब धनिया इस मंहगाँई के ज़माने में कैसे अपना ख़र्च पूरा कर पाती है।

और धनिया, उसके सुख दुख की साथिन! उसकी याद आते ही रमुआ की आँखें भर आयीं। कलेजे में एक हूक सी उठ आयी। उसकी चाल धीमी हो गयी। उसे याद हो आयी वह बिछुड़न की

घड़ी ! किस तरह धनिया उस से लिपट कर बिलख बिलख कर रोयी थी ! किस तरह उसने बार बार अपनापन और प्रेम से भर ताकीद की थी, कि अपनी देह का ख्याल रखना ! खाने पीने में किसी प्रकार की कमी न रखना ! और रमुआ की निगाहें अपने ही आप अपने बाज़ुओं से होकर, छाती से गुज़रती हुई रानों पर जाकर टिक गयीं, जिनकी मांस पेशियां घुल गयी थीं, और चमड़ा ऐसे ढीला होकर लटक गया था, जैसे उसका मांस और हड्डियों से कोई सम्बन्ध ही न रह गया हो। ओह, शरीर की यह हालत जब धनिया देखेगी, तो उसका क्या हाल होगा ! पर वह करे क्या ? रुखा सूखा खाकर, इतनी मुशक्कत करनी पड़ती है। ठुमक ठुमक कर दिन भर ठेलिया खींचने से मांस जैसे घुल जाता है और खून जैसे सूख जाता है। और शाम को जो रूखा सूखा मिलता है, उससे पेट भी नहीं भरता ! फिर गयी ताकत लौटती कैसे ? जब धनिया उससे पूछे गी, "सोने की देह कैसे माटी में मिल गयी ? तो वह उसका क्या जवाब देगा ? कैसे उसे समझायेगा ? जब जब उसकी चिट्ठी आती है, वह हमेशा ताकीद करती है कि अपनी देह का ख्याल रखना ! कैसे वह अपनी देह का ख्याल रखे ?" इतनी कतर ब्योंत कर चलने पर तो यह हाल है कि उसके लिये महीने में मुश्किल से पन्द्रह बीस रुपये भेज पाता है। आज करीब ६ महीने हुए उसे आये। धनिया के शरीर पर वह एक साड़ी और एक झूला छोड़कर आया था। वह बार बार चिट्ठी में एक साड़ी भेजने की बात लिखवाती है। उसकी साड़ी तार तार हो गयी होगी। झूला कब का फट गया होगा। पर वह करे क्या ? कई बार कुछ रुपया जमा हो जाने पर एक साड़ी खरीदने की गरज़ से वह बाज़ार में भी जा चुका है। पर वहां मामूली मौआली और टांडे की जूलहटी साड़ियों की कीमत जब बारह चौदह रुपये सुनता है तो उसकी आँखे ललाट पर चढ़ जाती है। मन मार कर लौट आता

है। वह क्या करे? कैसे साड़ी भेजे धनिया को? साड़ी खरीद कर भेजे तो उसके खर्चे के लिये रुपये कैसे भेज सकेगा? पर ऐसे कब तक चलेगा? कब तक धनिया सी टांक कर गुजारा करेगी? उसे लगता है कि यह एक ऐसी समस्य है जिस का उसके पास कोई हल नहीं है। तो क्या धनिया......और उसका माथा भन्ना उठता है। लगता है कि वह पागल हो उठेगा! नहीं, नहीं वह धनिया की लाज..........

उसकी गली की मोड़ आ गयी। इस गली में ईंटें बिछी हैं। उन पर पड़ ठेलियाँ और जोर से खड़खड़ा उठी। उसकी खड़ खड़ाहट उस समय रमुआ को ऐसी लगीं, जैसे उसके थके, परेशान दिमाग पर कोई हथौड़े की चोट कर रहा हो। उसके शरीर की अवस्था इस समय ऐसी थी, जैसे उसकी सारी संजीवनी शक्ति नष्ट हो गयी हो और उसके पैर ऐसे पड़ रहे थे जैसे वह अपनी शक्ति से नहीं उठ रहे हों, बल्कि ठेलिया ही उसको आगे की ओर लुढ़काती चली जा रही हो।

उस दिन से रमुआ ने और अधिक मेहनत करना शुरू कर दिया। पहले भी वह कम मेहनत नहीं करता था, पर थक जाने पर कुछ आराम करना ज़रूरी समझता था। किन्तु अब थके रहने पर भी अगर कोई उसे सामान ढोने को बुलाता, तो वह ना नुकर न करता। खुराक में भी जहाँ तक मुमकिन था, कमी कर दी। यह सब सिर्फ़ इस लिये कर रहा था, कि धनिया के लिये वह एक साड़ी खरीद सके।

महीना खतम हुआ, तो उसने देखा कि इतने तरुद्दुद और परेशानी के बाद भी वह अपनी पहले की आय में सिर्फ़ चार रुपये

अधिक जोड़ सका है। यह देख उसे आश्चर्य के साथ घोर निराशा भी हुई। इस तरह वह पूरे तीन चार महीने मेहनत करे तब कहीं एक साड़ी का दाम जमा कर पायेगा। पर इस महीने के जी तोड़ कर परिश्रम करने का उसे जो अनुभव हुआ था, उससे यह बात तय थी कि वह ऐसी मेहनत अधिक दिनों तक लगातार करेगा, तो एक दिन खून उगल कर मर जायेगा। उसने तो सोचा था कि एक महीने की ही तो बात है। जितना मुमकिन होगा, वह मुशक्कत करके कमा लेगा और साड़ी खरीद कर धनिया को भेज देगा। पर इसका जो नतीजा हुआ, उसे देखकर हालत वही हुई, जो रेगिस्तान के उस प्यासे मुसाफिर की होती है। जो पानी की तरह किसी चमकती हुई चीज़ को देखकर थके हुए पैरों को घसीटता हुआ, और आगे चलने की शक्ति न रहते भी सिर्फ़ इस आशा से प्राणों का ज़ोर लगा बढ़ता है कि बस वहां तक पहुंचने में चाहे जो दुर्गति हो जाय पर वहां पहुँच जाने पर जब उसे पानी मिल जायेगा, तो सारी मेहनत मुशक्कत सुफल हो जायगी, किन्तु जब वहाँ किसी तरह पहुँच जाता है, तो देखता है, कि अरे वह चीज़ तो अभी उतनी ही दूर है। निदान, रमुआ की चिन्ता बहुत बढ़ गयीं। वह अब क्या करे, उसकी समझ में नहीं आ रहा था। कई महीने से वह धनिया को बहलाता आ रहा था कि वह अब साड़ी भेजेगा। पर अब उसे लग रहा है, कि वह धनिया को कभी भी साड़ी न भेज सकेगा। उसे अपनी दुरावस्था और बेबसी पर बड़ा दुख हुआ। साथ ही अपनी जिन्दगी उसे वैसे ही बेकार लगने लगी, जैसे घोर निराशा में पड़कर किसी आत्महत्या करने वाले को लगती है। फिर भी जब धनिया को रूपेये भेजने लगा, तो अपनी आत्मा तक को धोखा दे उसने फिर लिखवाया कि अगले महीने वह ज़रूर साड़ी भेजेगा। थोड़े दिनों तक वह और किसी तरह गुजारा कर ले।

:२:

उस सुबह रमुआ अपनी ठेलिया के पास खड़ा जम्हाई ले रहा था कि सेठ के दरबान ने आकर कहा—"ठेलिया लेकर चलो, सेठ जी बुला रहे है।"

बेगार की बात सोच रमुआ ने दरबान की ओर देखा। दरबान ने कहा—"इस तरह क्या देख रहे हो? सेठ जी की भैंस मर गयी है। उसे गंगा जी में बहाने ले जाना है। चलो जल्दी करो।"

वैसे निषिद्ध काम की बात सोच उसे कुछ क्षोभ हो आया। गांव में मरे हुए जानवरों को चमार उठा ले जाते है। वह यह काम नहीं करेगा। पर दूसरे ही क्षण उसके दिमाग़ में यह बात भी आयी कि वह सेठ का ताबेदार है, उसकी बात वह टाल देगा, तो वह अपनी ठेलिया उससे ले लेगा। फिर क्या रहेगा उसकी जिन्दगी का सहारा? मरता क्या न करता? वह ठेलिया को ले दरबान के पीछे चल पड़ा।

कोठी के पास पहुंच कर रमुआ ने देखा कि कोठी की बगल में टीन की छाजन के नीचे मरी हुई भैंस पड़ी है और उसे घेर कर सेठ, उसके लड़के, मुनीम और नौकर चाकर खड़े है, जैसे उनका कोई अज़ीज़ मर गया हो। ठेलिया खड़ी कर, वह खिन्न मन लिये खड़ा हो गया।

उसे आया देख मुनीम ने सेठ की ओर मुड़ कर कहा—"सेठ जी ठेलिया आ गयी। अब इसे जल प्रवाह के लिये उठवा कर ठेलिया र रखवा देना चाहिए।"

"हाँ, मुनीम जी, तो इसके कफन वगैरा का इन्तजाम करा दें। मेरे यहां इसने जीवन भर सुख किया, अब मरने के बाद इसे नंगी ही क्या जल प्रवाह के लिये भेजा जाय? मेरे देखने में बिछाने के लिये एक नयी दरी और ओढ़ने के लिए आठ गज मलमल काफ़ी होगा। जल्द दुकान से मंगा भेजें"

देखते ही देखते उसकी ठेलिया पर नयी दरी बिछा दी गई। उसे देखकर रमुआ की धंसी आखों में न जाने कितने दिनों की एक पामाल हसरत उभर आयी। सहज ही उसके मन में उठा, काश, वह उस पर सो सकता! पर दूसरे ही क्षण इस अपवित्र ख्याल के भय से जैसे वह कांप उठा। उसने आँखें दूसरी ओर मोड़ लीं।

कई नौकरों ने मिलकर भैंस की लाश उठा बिछी दरी पर रख दी। फिर उसे मलमल से अच्छी तरह ढक दिया गया। इतने में एक खैरख्वाह नौकर सेठ जी की बगिया से कुछ फूल तोड़ लाया। उसका एक हार बना भैंस के गले में डाल दिया गया और कुछ इधर उधर उसके शरीर पर बिखेर दिये गये।

यह सब कुछ हो जाने पर सेठ के बड़े लड़के ने रमुआ की ओर मुड़ कर कहा, "देखो इसे तेज धारा में लेजाकर छोड़ना और जब तक यह धारा में बह न जाय तब तक न हटना, नहीं तो कोई इसके कफन पर हाथ साफ कर देगा।"

उसकी बात सुनकर नमक हलाल मुनीम ने रद्दा जमाया—"हाँ बे रमुआ, बाबू की बात का ख्याल रखना!"

रमुआ को लगा, जैसे यह बात उसे ही लक्ष्य करके कही गयी हो। कभी कभी ऐसा होता है कि जो बात आदमी के मन में

कभी स्वप्न में भी नहीं आती, वही किसी के कह देने पर ऐसे मन में बैठ जाती है, जैसे सचमुच वह बात पहले ही से उसके मन में थी। रमुआ के ख्याल में भी यह बात नहीं थी कि वह कफ़न को हाथ लगायेगा, पर मुनीम की बात सुन सचमुच उसके मन में यह बात कौंध गयी कि क्या वह भी ऐसा कर सकता है?

वह इन्हीं विचारों में खोया हुआ ठेलिया उठा आगे बढ़ा। अभी थोड़ी ही दूर सड़क पर चल पाया था कि किसी ने पूछा—"क्यों, भाई, यह किसकी भैंस थी?"

रमुआ ने आगे बढ़ते हुए कहा—"सेठ लक्ष्मीलाल की।"

उस आदमी ने कहा—"तभी तो। भाई बड़ी भाग्यवान थी यह भैंस, नहीं तो आज कल किसे नसीब होता है मलमल का कफ़न।"

रमुआ के मन में उसकी बात सुनकर उठा कि क्या सचमुच मलमल का कफ़न इतना अच्छा है। उसने अभी तक उसकी ओर निगाह नहीं उठायी थी। यही सोच कर कि कहीं उसे देखते देख कर सेठ का लड़का और मुनीम यह न सोचें, कि वह ललचायी आँखों से कफ़न की ओर देख रहा है। उसकी नियत खराब मालूम होती है। पर वह अब अपने को न रोक सका। चलते हुए उसने एक बार अगल बगल देखा, फिर पीछे मुड़ कर भैंस पर पड़े कफ़न को उड़ती हुई नज़र से ऐसे देखा, जैसे वह कोई चोरी कर रहा हो।

काली भैंसे पर पड़ा सफ़ेद मलमल, जैसे काली दूब के एक चप्पे पर उज्जवल चांदनी फैली हुई हो। सचमुच यह तो बड़ा उम्दा कपड़ा मालूम देता है, उसने मन में ही कहा।

कई बार यह बात उसके मन में उठी, तो सहज ही उसे उन

मौआली और टांडे की झिलंगी साड़ियों की याद आ गयी, जिन्हें वह बाज़ार में देख चुका था, और जिनकी कीमत बारह चौदह से कम न थी। उसने उन साड़ियों का मुकाबिला मलमल के उस कपड़े से निगाहों में ही जब किया, तो उसे वह मलमल बेशकीमत जान पड़ा। उसने फिर मन में ही कहा, "इस मलमल की साड़ी तो बहुत ही अच्छी होगी।" और उसे धनिया के लिये साड़ी की याद आ गयी। फिर जैसे इस कल्पना से ही वह कांप उठा। ओह, कैसी बात सोच रहा है वह ? जीते जी ही धनिया को कफ़न की साड़ी पहिनायेगा ? नहीं नहीं, वह ऐसा सोचेगा भी नहीं। ऐसा सोचना भी अपशकुन है। और इस ख्याल से छुटकारा पाने के लिये वह अब और ज़ोर से ठेलिया खींचने लगा।

अब आबादी पीछे छूट गयी थी। सूनी सड़क पर कहीं कोई नज़र नहीं आ रहा था। अब जाकर उसने शान्ति की साँस ली। जैसे अब उसे किसी की अपनी ओर घूरती आँखों का डर न रह गया हो। ठेलिया कमर से लगाये ही वह सुस्ताने लगा। तेज़ चलने में जो ख्याल पीछे छुट गये थे, जैसे वे फिर उसके खड़े होते ही उसके मस्तिष्क में पहुँच गये। उसने बहुत चाहा कि वे ख्याल न आयें, पर ख्यालों का यह स्वभाव होता है, कि जितना ही ही आप उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करेंगे, वे उतनी ही तीव्रता से आपके मस्तिष्क में छाते जायेंगे। रमुआ ने अन्य कितनी ही बातों में अपने को बहलाने की कोशिश की, पर फिर फिर उन्हीं ख्यालों से उसका सामना हो जाता। रह रह कर वही बातें पानी में तेल की तरह उसकी विचार धारा पर तैर जातीं। लाचार वह फिर चल पड़ा। धीरे धीरे रफतार तेज़ कर दी। पर अब ख्यालों की रफतार जैसे उसकी रफतार से भी तेज़ हो गयी थी। अब उनसे किसी भी प्रकार छुटकारा पाना सम्भव नहीं था। तेज़ रफतार से लगातार चलते

चलते उसके शरीर से पसीने की धारें छूट रही थीं। छाती फूल रही थी, चेहरा सुर्ख हो गया था, आँखें उबल रही थीं और गर्दन और कनपटियों की रगें फूल फूल कर उभर आयी थीं। पर उसे उन सब का जैसे कुछ खयाल ही नहीं था। वह भागा जा रहा था कि वह जल्द से जल्द नदी पहुंच जाय। और भैंस की लाश धारा में छोड़ दे। तभी उसे उस अपवित्र विचार से, उस धर्म संकट से मुक्ति मिलेगी।

अब सड़क नदी के किनारे किनारे चल रही थी। उसने सोचा क्यों न कगार पर से ही लाश नदी की धारा में लुढ़का दे, पर दूसरे ही क्षण उसके अन्दर से कोई बोल उठा, "अब जल्दी क्या है? नदी आ गयी। थोड़ी दूर और चलो। वहां कगार से उतर कर बीच धारा में छोड़ना।" वह आगे बढ़ा। पर बीच धारा में छोड़ने की बात क्यों उसके मन में उठ रही है? क्यों नहीं वह उसे यहीं छोड़कर अपने को कफ़न के लोभ से, उस अपवित्र खयाल से मुक्त कर लेता? शायद इस लिये कि सेठ के लड़के ने ऐसा ही करने को कहा था। पर सेठ का लड़का यहाँ खड़ा खड़ा देख तो नहीं रहा है। फिर? तो क्या उसे अब उसी वस्तु से, जिससे जल्दी जल्दी छुटकारा पाने के लिये वह भागता हुआ आया है, मोह हो गया है? नहीं नहीं, वह तो...वह तो...

अब वह श्मशान से होकर गुजर रहा था। अपनी झोपड़ी से झाँक कर डोमिन ने देखा, तो वह उसकी ओर दौड़ पड़ी। पास जाकर बोली—"भैया, यहीं छोड़ दो न!"

रमुआ का दिल धक से कर गया। तो क्या यह बात डोमिन को मालूम है कि वह लाश को इसलिये लिये जा रहा है कि... नहीं, नहीं। तो ?

"भैया, यहां धारा तेज़ है ? छोड़ दो न यहीं !" डोमिन ने फिर बिनती की।

हाँ, हाँ, छोड़ दे न। यह मौका अच्छा है। डोमिन के सामने ही, उसे गवाह बना कर छोड़ दे। और साबित करदे कि तेरे दिल में वैसी कोई बात नहीं है! रमुआ के दिल ने ललकारा। पर वह यों ही डोमिन से पूछ बैठा—"क्यों छोड़ दूं ?"

"तुम्हें तो कहीं न कहीं छोड़ना ही है। यहां छोड़ दोगे तो तुम्हें भी दूर ले जाने की मेहनत से छुटकारा मिल जायेगा, और मुझे......" कह कर वह कफ़न की ओर ललचायी दृष्टि से देखने लगा।

"तुम्हें क्या ?" रमुआ ने पूछा।

"मुझे यह कफन मिल जायेगा।" उसने कफन की ओर उंगली से इशारा करके कहा।

"कफ़न ?" रमुआ के मुंह से यों ही निकल गया।

"हाँ, हां, कहीं इधर उधर छोड़ दोगे तो बेकार में सड़ गल जायेगा। मुझे मिल जायगा, तो मैं उसे पहनूंगी। देखने हो न मेरे कपड़े।" जैसे कहकर उसने अपने लहंगे की गुदड़ी हाथ से उठा उसे दिखा दी।

"तुम पहनोगी कफ़न ?" रमुआ ने ऐसे कहा उसे उसकी बात पर विश्वास ही न हो रहा हो।

"हाँ, हां, हम तो हमेशा कफ़न ही पहनते हैं। मालूम होता है, तुम शहर के रहने वाले नहीं हो। क्या तुम्हारे यहाँ......"

"हाँ हमारे यहाँ तो कोई छूता तक नहीं। कफ़न पहनने से से तुम्हें कुछ होता नहीं ?"

रमुआ की किसी शंका ने जैसे अपना समाधान चाहा, पर वह ऐसे स्वर में बोला, जैसे यों ही जानना चाहता हो।

"ग़रीबों को कुछ नहीं होता, भैया। आज कल तो जमाने में ऐसी आग लगी है, कि लोग लाशें नंगी ही लुढ़का जाते हैं। नहीं तो पहले इतने कफ़न मिलते थे, कि हम बाज़ार में बेंच आते थे।"

"बाज़ार में बेच आते थे?', रमुआ ने ऐसे पूछा जैसे उसके आश्चर्य का ठिकाना न हो—"कौन खरीदता था उन्हें?"

"हमसे कबाड़ी खरीदते थे, और उनसे ग़रीब और मज़दूर।" उसने कहा।

"ग़रीब और मज़दूर?" रमुआ ने जैसे अकचका कर कहा।

"हाँ, हाँ, बहुत सस्ता बिकता था न। शहर के ग़रीब और मज़दूर ज्यादा तर वही कपड़े पहनते थे।"

रमुआ उसकी बात सुन जैसे किसी सोच में पड़ गया।

उसे चुप देख डोमिन फिर बोली—"तो भैया, छोड़ दो न यहीं। आज न जाने कितने दिन बाद ऐसा कफ़न दिखाई पड़ा है। किसी बहुत बड़े आदमी की मैत मालूम देती है। तभी तो ऐसा कफ़न मिला है इसे। छोड़ दो भैया, मुझ ग़रीब के काम आ जायगा। तुम्हें दुआयें दूंगी।" कहते कहते वह गिड़गिड़ा पड़ी।

रमुआ के मन का संघर्ष और तीव्र हो उठा। उसने एक नज़र डोमिन पर उठायी, तो सहसा उसे लगा, जैसे उसकी धनिया चिथड़ों में लिपटी डोमिन की बगल में आ खड़ी हुई है, और कह रही है, "नहीं नहीं, इसे न देना। मैं भी नंगी होकर रही हूं। मुझे,

मुझे...''...और उसने ठेलिया आगे बढ़ा दी।

''क्यों, भैया, तो नहीं छोड़ोगे यहाँ ?'' डोमिन निराश हो बोली।

रमुआ सकपका गया। क्या जवाब दे वह उसे ? मन का चोर जैसे उसे पानी पानी कर रहा था। फिर भी जोर लगाकर मन की बात दबा उसने कहा—''सेठ का हुकम है कि इसका कफ़न कोई छूने न पाये।'' और ठेलिया को इतने जोर से आगे बढ़ाया, जैसे वह इस ख्याल से डर गया हो कि कहीं डोमिन कह उठे, ''हूं हूं, यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी नीयत खुद खराब है ?''

काफ़ी दूर बढ़कर, यह सोचकर कि कहीं डोमिन कफ़न के लोभ से उसका पीछा तो नहीं कर रही है, उसने मुड़ कर चोर की तरह पीछे देखा। डोमिन एक लड़के को उसी की ओर हाथ उठाकर कुछ कहती सी लगी। फिर उसने देखा कि वह लड़का उसी की ओर आ रहा है। वह घबड़ा उठा। तो क्या वह लड़का उसका पीछा करेगा ?

अब वह धीरे धीरे रहरह कर पीछे मुड़ मुड़ कर लड़के की गति विधि को ताड़ता चलने लगा। थोड़ी दूर जाने के बाद उसने देखा तो लड़का दिखाई नहीं दिया। फिर जो उसकी दृष्टि झाऊं के झुरमुटों पर पड़ी तो शक हुआ कि वह छिप कर तो उसका पीछा नहीं कर रहा है। पर कई बार आगे बढ़ते बढ़ते देखने पर भी जब उसे लड़के का कोई चिन्ह दिखायी न दिया, तो वह उस ओर से निश्चिन्त हो गया। फिर भी चौकन्नी नज़रों से इधर उधर देखता ही बढ़ रहा था।

काफी दूर एक निर्जन स्थान पर उसने नदी के पास ठेलिया

रोकी। फिर चारों ओर शंका की दृष्टि से एक बार देखकर उसने कमर से ठेलिया छुड़ा ज़मीन पर रख दी।

अब उसके दिल में कोई दुविधा न थी, फिर भी जब उसने कफ़न की ओर हाथ बढ़ाया, तो उसकी आत्मा की नींव तक हिल उठी। उसके काँपते हाथों को जैसे किसी शक्ति ने पीछे खींच लिया। दिल धड़ धड़ करने लगा। आँखें विभत्सता की सीमा तक फैल गयीं, उसे लगा, जैसे सामने हवा में हज़ारों फैली हुई आंखें उसकी ओर घूर रही हों। वह इसी दहशत में काँपता बैठ गया। नहीं, नहीं, उससे यह न होगा! फिर जैसे किसी आवेश में उठ, उसने ठेलिया को उठाया कि लाश को नदी में उलट दे, कि सहसा उसे लगा जैसे फिर धनिया उसके सामने आ खड़ी हुई है, जिसकी कसीफ़ साड़ी में साबित कपड़े से अधिक पेवन्द लगे हुए हैं, जिसके जगह जगह बुरी तरह फट जाने से अंगों के हिस्से दिखायी दे रहे हैं, वह उन अंगों को सिमट सिकुड़ कर छिपाती जैसे बोल उठी—"देखो, अब अगर साड़ी न भेजी, तो मेरी दशा......"

"नहीं, नहीं, !" रमुआ कुहनी से आंखों को ढकता हुआ चीख उठा और ठेलिया जमीन पर छोड़ दी। फिर एक बार उसने चारों ओर शीघ्रता से देखा और जैसे एक क्षण को उसके दिल की धड़कन बन्द हो गयी। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उसका ज्ञान जैसे लुप्त हो गया। और उसी हालत में, उसी क्षण में उसके हाथों ने बिजली की तेजी से कफन खींचा, समेट कर एक ओर रखा और ठेलिया उठाकर लाश को नदी में उलटा दिया, तब जाकर जैसे उसे होश हुआ, उसने जल्दी में कफन ठेलिया पर रख उसे माथे के मैले गमछे अच्छी तरह ढक दिया। और ठेलिया उठा तेजी से दूसरी राह से चल दिया।

कुछ दूर तक बिना इधर-उधर देखे वह सीधे तेज़ी से चलता रहा, जैसे वह डर रहा था कि इधर उधर देखने पर कहीं कोई दिखाई न

पड़ जाय। पर कुछ दूर और आगे बढ़ जाने पर वह वैसे ही निडर हो गया, जैसे चोर सेंध से दूर भाग जाने पर। अब उसकी चाल में धीरे २ ऐसी लापरवाही आ गयी, जैसे कोई विशेष बात ही न हुई हो। जैसे वह रोज की तरह आज भी किसी बाबू का सामान पहुँचा कर खाली ठेलिया को धीरे धीरे खींचता, अपने में रमा हुआ डेरे पर वापस जा रहा हो। अपनी चाल में वह वही स्वाभाविकता लाने की भरसक चेष्टा कर रहा था, पर उसे लगता था, कि कहीं से वह बेहद अस्वाभाविक हो उठा है। और कदाचित उसकी चाल की लापरवाही का यही कारण था, कि वह रात होने के पहले शहर में दाखिल नहीं होना चाहता था।

काफी दूर निकल जाने पर न जाने उसके जी में क्या आया, कि उसने पलट कर उस स्थान की ओर एक बार फिर देखा, जहाँ उसने भैंस की लाश गिरायी थी, तो कोई लड़का काली सी चीज़ पानी में से खींच रहा था। वह फिर बेतहाशा ठेलिया की सड़क पर खड़खड़ाता भाग खड़ा हुआ।

: ३ :

उस दिन गांव में मलमल की हल्दी में रंगी साड़ी पहने धनिया अपने बच्चे को एक हाथ की उंगली पकड़ाये, और दूसरे हाथ में छाक भरा लोटा कन्धे तक उठाये, जब काली माई की पूजा करने चली, तो उसके पैर असीम प्रसन्नता के कारण सीधे नहीं पड़ रहे थे। उसकी आँखों से जैसे उल्लास छलका पड़ता था।

रास्ते में न जाने कितनी औरतों और मर्दों ने उसे टोक कर पूछा —"क्यों धनिया, यह साड़ी रमुआ ने भेजी है?"

और उसने हर बार शरमाई आँखों को नीचे कर, होंठों पर उमड़ती हुई मुस्कान को बरबस दबाकर, सिर हिला जताया, "हां"

प्रकाश पण्डित

ज़ेनू

युग की आवाज़

प्रकाश पण्डित

ज़ेनू

बर्फ़, बर्फ़, बर्फ़ ! चारों ओर बर्फ़–ही–बर्फ़ है। झील डल का गहरा नीला पानी बर्फ़ की दूधिया चादर ओढ़कर सो गया है। सामने शंकराचार्य पहाड़ सिर से पाँव तक बर्फ़ का लबादा ओढ़े मौन-मूक खड़ा है। पूरा शहर, बल्कि पूरी दुनिया एक गहरे सन्नाटे, एक गहरी नींद में डूबी हुई है। यहाँ तक कि डल रोड के बिजली के कुमकुमे भी बर्फ़ की हल्की-हल्की थपकियाँ पाकर आख़िर पलकें झपकाने लगे हैं। लेकिन मैं बैठा तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ।

सबसे पहले तो मुझे तुम्हारे दस पत्रों का उत्तर न देने के लिए क्षमा माँगनी है और किसी प्रकार का हीला-बहाना करने के बजाय इतना भर कहना है कि इस बार अगर मेरे स्थान पर तुम यहाँ होते और यही ऋतु होती, यही दृश्य होते और सबसे बड़ी बात यह कि मेरी तरह तुम भी इन सुन्दर दृश्यों को कैनवस के पर्दों में सुरक्षित करने के इरादे से यहाँ आये होते, तो दस तो क्या, तुम मेरे दस हज़ार पत्रों का भी उत्तर न देते।

फिर मैं तुम्हें क्यों पत्र लिख रहा हूँ ? इस का मेरे पास एक उचित कारण है। इधर मेरे साथ एक ऐसी आश्चर्यजनक घटना घटी है कि जब तक किसी से उसका ज़िक्र नहीं कर लूंगा, मुझे चैन नहीं पड़ेगा।

घटना और चैन न पड़ने से यह मत समझ लेना कि आम आर्टिस्टों और सैलानियों की तरह मैं भी इस सुन्दर वादी की किसी सुन्दरी के प्रेम-जाल में फंस गया हूं और अब अपनी प्रेमिका को वश में करने के लिए तुम से कोई आसान नुस्खा चाहता हूँ। नहीं, यह घटना सर्वथा भिन्न प्रकार की है।

यह एक विचित्र बात है, मेरे मित्र, कि जिस बर्फ़ को चित्रित करने के लिए मैंने सैकड़ों मील का सफ़र किया, कितने ही कष्ट झेले, खिलन मर्ग से भी ऊपर अलपत्थर ऐसी खतरनाक जगहों पर चढ़ा, जहाँ ज़रा-सी असावधानी या प्रकृति का एक मामूली-सा मज़ाक भी मेरी मृत्यु का कारण बन सकता था, और जिस बर्फ़ को विभिन्न कोणों से चित्रित करके मैंने हज़ारों रुपये और इतना बड़ा नाम कमाया है, आज उसी सरल-स्वभाव वर्फ़ से मुझे बड़ा भय लगता है।

यह तो तुम्हें मालूम ही है कि आज से सात-आठ वर्ष पहले मैं हर साल काश्मीर आया करता था और मुझे यहाँ के दृश्यों से पागलपन की हद तक इश्क़ था; तुम इसे मेरी भावुकता कह सकते हो, लेकिन मेरी नज़र में संसार की सुन्दर-से-सुन्दर वादी भी यहाँ के पहाड़ों, चश्मों, और बर्फ़ का मुकाबिला नहीं कर सकती। और यही कारण था कि जब पेरिस की प्रदर्शनी के दिनों में मुझे काश्मीर पर कबायली हमले की खबर मिली और समाचार पत्रों में मैंने इस स्वर्ग-भूमि के कुछ इलाकों को खंडहर के रूप में देखा, तो मैंने तुरन्त काश्मीर से सम्बंधित अपने सभी चित्रों पर से उन की कीमतों के लेबल फाड़ डाले थे और उन पर 'बिक्री के लिए नहीं' के लेबल चस्पाँ करवा दिये थे।

आठ साल बाद मुझे अपने प्रिय दृश्यों को फिर से चित्रित करने

का अवसर मिला है। काश्मीर की वादी फिर रंगारंग हो उठी है। और मैं इतने चित्र बनाना चाहता हूँ कि तुम से क्या कहूं। लेकिन तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन दो महीनों में, जब से मैं यहां हूँ, मैं एक भी चित्र नहीं बना पाया और यह बर्फ़...

शायद इस बर्फ़ को अब मैं कभी चित्रित नहीं कर सकूंगा। क्या तुम विश्वास कर सकते हो कि अब जब भी मैं किसी बर्फ़ानी दृश्य को चित्रित करने की इरादा करता हूं, तो मुझे उसमें से शोले से लपकते दिखायी देते हैं और मेरे हाथ रुक जाते हैं, मेरा मस्तिष्क शिथिल हो जाता है और मेरे सामने ज़ेनू आ खड़ा होता है।

ज़ेनू! जिसका असल नाम तो शायद उसे भी मालूम नहीं; लेकिन जो अब तक सैकड़ों नामों से पुकारा जा चुका है; कभी 'अबे ओ छोकरे', कभी 'अबे ओ लड़के' और कभी 'अबे ओ' के नाम से; जिसकी आयु केवल सोलह वर्ष की है, लेकिन जो अपनी आधी आयु से पहाड़ी गाईड का काम कर रहा है और अंग्रेजों, अमरीकनों, पारसियों, यहूदियों, हर रंग और हर जाति के सैलानियों के साथ ऊंची-से-ऊंची चोटियों और गहरी-से-गहरी खाइयों में घूमा है और बदले में जूठा खाना, चन्द टके और गालियाँ और थप्पड़ पा चुका है; जिसके सामने के दो दाँत उसके बूढ़े बाप ने तोड़ डाले थे; जिसकी माँ को कोई अज्ञात अफ़सर और जिसकी बहन को कोई अज्ञात सैलानी बहका ले गया था। जिसका दाहिना बाज़ू किसी अंग्रेज़ औरत को फ़िरोज़पुर के नाले में गिरने से बचाते हुए स्वयं नाले में गिर जाने से टूट गया था और उचित इलाज न हो सकने से आख़िर कटवाना पड़ा था; वही ज़ेनू, जो अपनी आयु की अपेक्षा से कहीं अधिक अनुभवी और कहीं अधिक आयु का दिखायी देता है, और

इन दिनों जो मेरा पहाड़ी गाइड है।

तुम ज़रूर सोच रहे होगे कि अपनी उस घटना का ज़िक्र करने की बजाय मैं यह क्या बेढंगी-सी चर्चा ले बैठा हूं और यह भी क्या बात हुई कि जब भी मैं कोई दृश्य चित्रित करने का इरादा करता हूँ, तो उसमें ज़ेनू नाम का कोई अपंग लड़का बाधा बन जाता है। लेकिन मैं तुम्हें किस तरह बताऊँ, मेरे मित्र, कि यह सोलह साल का ज़ेनू जो अब तक सोलह सौ नामों से ज़रूर पुकारा जा चुका है, और जो इन दिनों एक तरह से मेरा ज़रखरीद गुलाम है, मेरे लिये अच्छे-से-अच्छा खाना पकाता है, मेरे साथ ताश खेलता है, पहाड़ों और खाइयों का परिचय कराता है, तरह-तरह के किस्से-कहानियों से मेरा जी बहलाता है, और मेरी या तुम्हारी नज़र में जिसका कोई विशेष महत्व नहीं हो सकता, उसी ज़ेनू की आँख से आँख मिलाने का मैं साहस नहीं कर पाता। उसके सामने आते ही एक विचित्र लज्जा भाव से मेरी नज़रें झुक जाती हैं। निरपराध होने पर भी मैं अपने आप को अपराधी अनुभव करने लगता हूँ और मुझे लगता है कि जैसे मैंने बर्फ़ के जितने चित्र बनाये हैं, सब के सब बेजान हैं। उनमें बर्फ़ तो है, लेकिन बर्फ़ की आत्मा नहीं, पहाड़ों का खून नहीं, काश्मीर के प्राण नहीं; जैसे आज तक मैंने तस्वीरें नहीं बनायी हैं, झख मारी हो, जैसे मैं अन्धा हूँ, और छिलके को ही सब-कुछ समझकर आज तक अपने झूठे ज्ञान और झूठी कला पर दम्भ करता रहा हूँ।

यह मेरे यहाँ आने के सात दिन बाद की बात है। शायद हम चौदह हज़ार फुट की ऊंचाई पर थे और मैं बहुत खुश था, क्योंकि सात दिनों की दौड़-धूप और निराशा के बाद अब अचानक एक बड़ा सुन्दर कोण मिल गया था और मेरा ब्रश इस तेज़ी से अपना काम कर रहा था। कि स्वयं मुझे अपने आप पर आश्चर्य हो

रहा था। ज़ेनू से मैंने खेमा गाड़ने के लिए कह दिया था। पूरा चित्र नहीं बनाने का मेरा इरादा था।

यह एक ऐसा स्थान था, जहाँ दिन भर तो रूई ऐसे बर्फ़ के हल्के-हल्के गाले पड़ते थे, लेकिन रात को सख़्त बर्फ़बारी होती थी। ऋतु की सारी बाधाओं के बावजूद चित्र बड़ी तेज़ी से पूरा हो रहा था। तीसरे दिन जब मैं चित्र में आख़िरी टच दे रहा था और चित्र की ओर देख-देखकर फूला नहीं समा रहा था कि सहसा ज़ेनू भागता हुआ मेरे पास आया और बुरी तरह हकलाते हुए उसने सूचना दी कि हम सुरक्षित स्थान पर नहीं हैं और अभी थोड़ी देर में बड़ा भयानक तूफ़ान आनेवाला है। और सचमुच अभी हम अपना सामान भी अच्छी तरह समेट न पाये थे। और न ज़ेनू के परामर्शानुसार पहाड़ी टट्टुओं को खेमे के अन्दर दीवारों के साथ खड़ा ही कर पाये थे कि ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे आकाश फट पड़ा हो। बड़ी-बड़ी भीषण चट्टानें लुढ़क-लुढ़ककर जैसे हमारे सिरों के ऊपर से गुज़रने लगीं। हमारे देखते-देखते ही पहले एक और फिर दूसरा टट्टू भी तूफ़ान के रेले में चला गया...और फिर चीखता चिंघाड़ता एक बड़ा सा पत्थर गोली की-सी तेज़ी से हमारे खेमे के कैनवस को चीरता हुआ आर-पार हो गया और मारे भय के ज़ेनू की चीख निकल गयी।

ऐसे अचानक तूफ़ान में और ऐसी ऊंचाई पर मानव प्राणी का जीवित बच जाना एक चमत्कार से कम नहीं था। दो घंटे के बाद जब तूफ़ान का ज़ोर कुछ हल्का पड़ा और मैंने अपने को टटोल-टटोल कर विश्वास कर लिया कि अभी तक जीवित हूं, तो मैंने भय की मूरत बने ज़ेनू को झिंझोड़ा—"ज़ेनू! उठो ज़ेनू!"

ज़ेनू इतना भयभीत था कि उसकी जुबान से शब्द नहीं निकल रहे थे। मेरे झिंझोड़ने पर केवल इतना कह सका—"अभी नहीं, अभी नहीं!"

और फिर मेरे डाँटने पर उसने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में बताया कि तूफ़ान अभी समाप्त नहीं हुआ है, कुछ देर बाद ही पहले से भी भयंकर रेला आयेगा और उस रेले में हम किसी तरह नहीं बच सकेंगे और उसने प्रार्थना के लिए हाथ ऊपर उठा दिये; उसका शरीर थर-थर काँप रहा था।

"—तो फिर तो हमें जल्दी से किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना चाहिये!"—मैंने परेशान होकर कहा—"क्या यहाँ कहीं आस-पास शरण मिल सकती है?"

"—हाँ।" —मृत्यु की भयानकता में से दबी-दबी आवाज़ उभरी। लेकिन फिर मैंने देखा कि दूसरे ही क्षण ज़ेनू के तेवर बदल गये। उसका भय, उसका कम्पन जाता रहा। वह उठकर बैठ गया और बड़ी विचित्र नज़रों से मेरी ओर देखने लगा।

"—कहाँ? यहाँ से कितनी दूर है?—मैंने पूछा।"

"—ज्यादा दूर नहीं।"—उसने बड़ी दृढ़ता से कहा—"लेकिन मैं आपको वहाँ नहीं ले जाऊंगा!"

"—क्या अकेले ही?" मुझे किसी प्रकार उससे ऐसे अपमानजनक उत्तर की आशा नहीं थी। झुंझलाकर मैंने एक झापड़ लगाते हुए कहा—"क्या अपने साथ मुझे भी मारना चाहते हो?"

उसने मेरी बात काटते हुए और मेरे और अपने सम्बन्ध को सर्वथा स्थगित करते हुए उत्तर दिया—"कुछ भी हो, मैं आपको वहाँ

नहीं ले जा सकता ! वहाँ रेश्मां रहती है और उसका बाप रहता है ।"

"—तो इससे क्या हुआ ?" मैंने डपटकर कहा ।

"—रेश्मां जवान और खूबसूरत है और उसका बाप बूढ़ा है ।"

"—मैं पूछता हूं, इससे क्या हुआ ?" —मैंने और भी डपट कर कहा ।

मेरे प्रश्न पर ध्यान दिये बिना उसने बड़े ही दृढ़ स्वर में कहा ।

"—इसी लिए मैं आपको वहाँ नहीं ले जा सकता !"

अब जब भी मैं किसी बर्फ़ानी दृश्य को चित्रित करने का इरादा करता हूँ, तो शताब्दियों से जमी हुई इस सरल-स्वभाव बर्फ़ में मुझे शोले-से लपकते दिखायी देते हैं। मेरे हाथ रुक जाते हैं, मेरा मस्तिष्क शिथिल हो जाता है और मेरे सामने ज़ेनू, आ खड़ा होता है ।

वही ज़ेनू, जिसका कोई नाम नहीं और जिसके हज़ारों नाम हैं !

गुरुबचन सिंह

बवंडर

युग की आवाज़

गुरुबचन सिंह

बवंडर

वह अनमना सा घर से बाहर निकल आया। तब संध्या ढलने लगी थी, और सड़क पर राहगीरों की भीड़ बढ़ चली थी। उसके मोहल्ले की कुछ स्त्रियाँ और पुरुष, लड़के और लड़कियाँ, सज-धज कर सैर के लिए घर से निकल पड़े थे। कुछ देहाती माथे पर मोटरी रखे, हाथों में डंडा थामे, अपने अपने गांव की ओर बढ़े चले जा रहे थे। शौकीनों से लदे ताँगों का रुख नहर की ओर था। कुछ घुड़सवार, घोड़ों की बग़ल में दूध से भरी गागरें लादे हिचकोले खाते, नगर की ओर आ रहे थे। घर से निकलते ही उसने एक साइकल की दूकान के निकट खड़े हो कर उस बहती हुई सड़क का हल्का-सा निरीक्षण किया। फिर उसकी दृष्टि आड़ू और नाशपातियों के बाग़ की ओर घूम गयी; जहाँ डूबते हुए सूर्य की आरक्त आभा, क्षितिज का आँचल कर लहरा रही थी और पक्षियों का एक समूह शोर मचाता हुआ पेड़ों पर चक्कर काट रहा था। रह रह कर वहां 'ठप-ठप' का एक कर्कश नाद भी गूंज उठता था, जो पक्षियों को डराने के लिए लकड़ी की चोटों से उत्पन्न किया जा रहा था। वह कुछ देर वहां खड़ा रहा, शून्य और नीरव। वह मन ही मन बोला, "कहीं जीवन के चिह्न दिखाई नहीं पड़ते। सब ओर मानो मृत्यु की भयप्रद छाया फैली हुई है...! सब कुछ अशान्त और विरक्त है।"

दूकान वाले ने उसके बैठने के लिए बाहर एक कुर्सी ला रखी। उसने दूकान वाले से कहा, "धन्यवाद, मैं जरा टहलने जा रहा हूं।" और धीरे धीरे क़दम बढ़ाता हुआ वह नहर की ओर जाने लगा।

एक तांगे वाले ने निकट आ कर पूछा, "नहर चलिएगा, हुजूर?"

उसने कुछ बेपरवाही से जवाब दिया, "नहीं!" तांगे वाला घोड़े को चाबुक लगा आगे बढ़ गया। धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए, कुछ क्षणों के लिए उसे ऐसा लगा, जैसे सड़क की इस रौनक में एक ज़िंदगी है, एक बहार है। कहीं रंगीन रेशमी साड़ियों की, और कहीं गुलाबी दोपट्टों की। लोगों की बेसुध और मस्त हँसी में जीवन है और मुसकानों में जीवन की आभा।

किन्तु शीघ्र ही उसे ऐसा लगा, जैसे इन पर भी धीरे-धीरे छाने वाले अंधकार की तरह निराशा और मृत्यु का आवरण छाता चला जा रहा है। ंगों में बहार नहीं, अट्टहासों में जीवन नहीं, मुसकानों में मधुरता नहीं। कहीं कुछ नहीं, केवल नीरवता है और शून्यता......।

सामने सड़क के किनारे खोजों की टट्टियां थी। वहां सब्जी तरकारी बिक रही थी। लोग मोल-तोल कर रहे थे और जरूरत की चीजें खरीद रहे थे। सहसा उसकी नज़रें, गली के फ़ाटक पर लगे एक साइनबोर्ड की तरफ घूम गयीं। उस पर लिखा था—

"अतरसिंह वसीकानवीस, बाज़ार हरिपुरा......"

यह साइनबोर्ड पढ़ते ही अतरसिंह वसीकानवीस का चेहरा उसकी आंखों के सामने घूम गया। वह सोचने लगा बेचारे अतरसिंह को

काल ग्रस चुका है। एक दिन इसी अतरसिंह वसीकानवीस ने उसे सुरजीत द्वारा हस्ताक्षर किये गये फ़ारखती के काग़ज़ सौंपते हुए कहा था, "लीजिए, यह है आपकी अमानत, इसे संभाल कर रखिएगा। भविष्य में यह 'फारखती' आपके बहुत काम आएगी।" फिर कुछ रुक कर वह बोला था, "मिस्टर करतार ! क्या मैं एक मित्र के नाते आपसे यह पूछ सकता हूं कि आपने मिसेज़ सुरजीत से, या उन्होंने आपसे अपना सम्बन्ध–विच्छेद क्यों कर लिया ?",

इसके जवाब में शायद उस दिन उसने केवल इतना ही कहा था, "भाई अतरसिंह, हमारा मिलन अचानक एक घटना से हुआ था, और एक दूसरी घटना ने हमें अलग कर दिया। इसके अतिरिक्त और कुछ मुझे याद नहीं।"

"हां, अतरसिंह मेरी जिन्दगी के कुछ रहस्यों से परिचित है। इसके हाथों ने मेरे जीवन की धारा का रुख मोड़ने का प्रयत्न किया था। लेकिन इसका रुख किसी और ही तरफ़ फिर गया। जीवन की यह धारा बहती–बहती आज बहुत दूर निकल गयी है।" वह सड़क पर बढ़ता–बढ़ता सोचने लगा, "अतरसिंह...सुरजीत और न जाने कितने लोग कितने पीछे रह गये हैं ! स्वय उनके जीवन की धाराएं विभिन्न रूपों में कई ओर बह गयी हैं। सब-कुछ बदल चुका है...और जो शेष रह गया है, वह भी बदल रहा है ! यदि कुछ नहीं बदला है, तो शायद यह सड़क नहीं बदली...!" उसकी नज़रें सड़क पर पड़ गयीं—"न तो इस सड़क का रंग बदला है और न ही इसका रुख !" उसका जी चाहा, वह तेज़ी से कदम बढ़ाता हुआ इस सड़क को पार कर जाए। किन्तु तेज़ चलने से फ़ायदा ? उसकी मंज़िल तो केवल नहर तक है। उसके आगे यह काली सड़क

अपना रंग और रूप खो कर सरसों के पीले-पीले खेतों में विलीन हो जाती है। हाँ, यदि वह तेज़ चले तो सड़क के किनारे खड़े इन घरों को जल्दी पार कर सकता है। इन घरों पर मृत्यु की छाया फैली हुई है। इन पर खंडहरों की-सी वीरानी छायी हुई है। किसी घर से कोई हंसी की आवाज आती सुनाई नहीं देती, न हारमोनियम, न सितार, न गाने की स्वर-लहरी! बस, मौन छाया हुआ है। उसके क़दम तेज़ उठने लगे। सड़क यहां कुछ तंग थी और उसे राहगीरों से बच कर चलना पड़ता था।

सड़क के इस संकीर्ण भाग को पार कर वह बस्ती के बाहर निकल आया। यहाँ सड़क के दायीं ओर सामने एक कब्रिस्तान था और उसके परे आलूचों का बाग़! बायीं ओर सड़क से एक फरलांग हट कर नाशपातियों का बाग़ था, जिसकी शृंखला नहर तक फैलती चल गयी थी। बाग़ के एक किनारे, एक रिटायर्ड मेजर साहब की कोठी थी। कोठी के बाहर एक कार खड़ी थी, जिसमें कोई सुन्दरी बैठी थी, और एक युवक उसकी ओर झुका, कानाफूसी के अन्दाज़ में, उससे कुछ बातें कर रहा था। एक बार उस ओर देख कर उसने अपनी नजरें कब्रिस्तान की ओर घुमा लीं। कब्रिस्तान के गेट के सामने कुछ गधे धूल पर लोट रहे थे। धूल का हल्का-सा ग़ुब्बार ऊपर उठ रहा था। कब्रिस्तान का सांई, विरक्त आकृति में ज़ुल्फ़ें फैलाए, मुंह में अलगोज़ा लिये हीर के करुण स्वर फूंक रहा था। उसके जी ने चाहा, कुछ क्षणों के लिए वहाँ खड़ा हो जाए। किन्तु पग रोके न रुके। अतरसिंह वसीकानवीस का चेहरा फिर उसकी आंखों के सामने घूम गया। साथ ही उसके वे प्रश्न उसे स्मरण हो आये, जिनका जवाब उसने उस दिन उसे नहीं दिया था। सुरजीत के मिलन को उसने केवल एक घटना बताया था और उससे सम्बन्ध-विच्छेद को एक दूसरी

घटना । किन्तु आज वह अतरसिंह को सारी कहानी सुना सकता है ।

और वह मन ही मन अतीत की बीती घटनाओं को स्मरण कर उन्हें कहानी का रूप देने लगा । उसके पांव धीमे उठने लगे ।

वह भावों के मूक स्वर में जैसे अतरसिंह से कहने लगा, "भाई अतरसिंह, सुरजीत से मेरी पहली भेंट आज से लगभग पांच वर्ष पहले दिल्ली में हुई थी । उस दिल्ली में, जो भारत के पुराने इतिहास के समय की दिल्ली नहीं थी । पठानों के शासन-काल की दिल्ली नहीं थी । मुगलों और साम्राज्यी फिरंगियों के समय की दिल्ली नहीं थी । वह दिल्ली स्वतन्त्रता के बाद की शरणार्थियों की दिल्ली थी । मेरी और सुरजीत की दिल्ली थी । उससे मेरी सबसे पहली भेंट मेरे एक मित्र मलहोत्रा के यहां एक पार्टी में हुई थी । तभी मैंने जाना था कि वह देवी लाहौर से यहां आयी है, और एक स्थानीय गर्ल्स स्कूल में मिस्ट्रेस है । उसका एक छोटा बच्चा है, और आज वह सारे परिवार वालों से सदा के लिए बिछुड़ कर अकेली रहती है ।

"सचमुच संसार में उसका अपना कोई नहीं था । दुनिया उसे एकान्त और अकेली देख कर चुप नहीं रह पाती थी । जितने मुंह थे, उतनी बातें । बातें सुनते सुनते उसके कान पक चुके थे । किन्तु उसकी निष्ठा और साहस में कोई अन्तर नहीं आया था । एक दिन वह भयावह तूफानों में कली की भांति खिलने की शक्ति रखती थी । तब आगे चल कर लोगों की गन्दी सांसों से उसके आत्म-गौरव का सौरभ कैसे नष्ट हो जाता ? वह एक शिक्षित नारी थी । जो पैसे उसे मिलते थे, उनसे किसी प्रकार उस कठिन समय में उसका निर्वाह होता जा रहा था । शायद भविष्य की कोई सुखद कल्पना, और उससे

आत्म सन्तोष के कारण वह इस जीवन-पथ पर विचलित नहीं हो पाती थी। अत: वह अपने-आप में खुश दिखाई देती। हँसती, गाती और मुसकराती। कमल की भाँति उसका खिला हुआ चेहरा देख कर मन में स्नेह और करुणा उपजती थी। न जाने क्यों मेरे मन में एक विश्वास पलने लगा, जैसे मेरा और उसका, युगों का एक पुराना सम्बन्ध है, और मेरी तथा उसके जीवन की विभिन्न घटनाओं ने हमें मिलाया है। उसे भी कुछ ऐसा ही विश्वास होने लगा था। तब दो भावनाओं ने मिलकर एक नया सम्बन्ध-निर्माण किया। हम दोनों एक बन्धन में बंध गये, यानी हमारा विवाह हो गया। वैधव्य की मनहूस छाया उसके सिर से टल गयी। वह प्यार-भरी चांदनी में, मानो सरोवर के पवित्र जल में शतपल की भांति खिल उठी। मैं भंवरा बन कर झूम उठा। तब जीवन कितना सुखद और सुन्दर बन गया था, अत्तरसिंह वसीकानवीस, यह मेरे मन से पूछो!"

उसके निकट से एक ताँगा खड़खड़ाता हुआ आगे निकल गया। वह विचारों में खोया-खोया-सा चौंक उठा। पुन: उसकी दृष्टि तांगे में बैठी एक नववधू और उसके पति को निहारती निहारती, सड़क के किनारे बिखरी हुई धूल को निहारने लगी...और उसके कदम धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। अतरसिंह की छाया मानो उसके साथ ही चल रही थी। "हाँ तो भाई वसीक़ानवीस, मेरे इस विवाह से मेरे घर के लोग मुझसे पूर्णत: सहमत नहीं थे। मेरी ज़िद पर उन्होंने इस विवाह की अनुमति दे दी थी। इस विवाह के बाद तो उनकी उपेक्षा और विरोध का अंत हो जाना चाहिए था: क्योंकि जिसके प्रति उन्हें विरोध था, अब तो वह भी इस घर की देवी बन चुकी थी और हमारे परिवार का एक अंग भी। मैं जानता था, जिससे मैंने विवाह किया है वह एक विधवा स्त्री है। उसका एक बच्चा है। यदि मैं

चाहता तो मेरा विवाह किसी कवाँरी और धनी घर की लड़की से हो सकता था, जहां मेरा काफ़ी सम्मान होता, दहेज मिलता, और न जाने क्या कुछ जो कि विवाह के समय कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जाता है। पर यहां तो केवल मोह, प्यार और स्नेह ही मिला था। जिसके सामने मैं संसार–भर की माया को तुच्छ समझता था। मुझे सुरजीत जितनी प्यारी थी, उतनी ही अपनी ज़िद और उतना ही अपना विश्वास !

"भाई अतरसिंह, हमारा जीवन एक परिवारिक गाड़ी के दो पहिये बन कर आगे बढ़ने लगा और जैसे-तैसे तीन महीने बीत गये।

"तीन महीनों का पारिवारिक जीवन में क्या महत्व है। ये तो एक पल के समान बीत गये। तीन महीनों में तो सन्तोष और आनन्द का जीवन केवल आँख झपकता है। किन्तु मुझे ऐसा लगा, जैसे सुरजीत तो इन तीन महीनों में हँस-गा कर, फिर ैसे थक भी गयी। थक कर सो भी गयी। अब न उसके ओठों पर गीत थे और न हंसी। उसकी आंखों में केवल एक निराशा छाई दिखाई देती थी। आख़िर इसे हो क्या गया है, मैं परेशान हो कर सोचने लगा। पर मेरी समझ में कुछ भी न आया।

"एक दिन मैंने उससे कुछ पूछने का प्रयत्न किया। वह चुप रही। फिर मैंने एक दूसरे बहाने से कुछ जानना चाहा और दूसरे दिन उससे कहा, 'जीत, आजकल तुम बहुत उदास रहती हो, और कुछ परेशान भी, आख़िर बात क्या है ! देखो, यह स्कूल में पढ़ाने का धन्धा भी तुमने बेकार अपने सिर ले रखा है। इसे छोड़ ही दो, तो अच्छा है। उससे तुम्हारी चिंताएं बढ़ती हैं। स्वास्थ्य भी ख़राब होता है।"

वह गहरी सांस ले कर बोली, 'मैं बच्चों में रह कर कैसे परेशान हो सकती हूं, सरदार जी ! कभी मैं उनके बीच रह कर और उनकी भोली-भोली बातें सुन कर अपने दुखों को भूलने का यत्न किया करती थी, आज वे मेरे मेरे कष्ट का कारण कैसे बन सकते हैं ?'

'लेकिन तुम इतनी खोयी-खोयी-सी क्यों रहती हो ?'

'नहीं तो...' वह ज़रा रुक कर बोली, 'यह तो आपका भ्रम है ।'

''मैं सुन कर चुप रह गया । किन्तु मन ही मन बोला, 'सुरजीत तुम मुझसे बहुत बड़ा झूठ बोल रही हो !'

''उस दिन रात के समय माँ ने मुझसे कहा, 'बेटा, बहू कुछ उदास रहती है । पता नहीं, क्या बात है ! हम लोगों से तो सीधे मुंह बात तक नहीं करती । तुम ज़रा पूछो तो, बात क्या है । शायद हम लोगों से कुछ भूल हो गयी हो...।'

''मैंने माँ से कहा, 'नहीं माँ, बात ऐसी नहीं, उसकी तबीयत ही कुछ ऐसी है । जब उसे अपने जीवन के बीते दिन और सगे-सम्बन्धी याद आने लगते हैं, तब वह कुछ उदास हो जाती है ।'

''सहसा माँ के स्वरों में रुखाई आ गयी । वह बोली, 'यही तो मैं जानना चाहती हूं, । आखिर वह उन दिनों को क्यों नहीं भूल जाती...क्या इस घर और जीवन में उसके लिए कुछ भी नहीं ?'

''मैं सुन कर मौन रहा । मन ही मन सोचता रहा, है , सभी कुछ तो है...फिर न जाने सुरजीत क्यों उदास रहती है...क्यों...?'

''मैं परेशान-सा यही कुछ सोचता रहा । कोई उपाय नहीं सूझता था, किस प्रकार उससे यह बात पूछूं ।''

"कई दिनों के संघर्ष के बाद एक रात मैंने उससे कहा, 'जीत ! माता जी तुम्हारी बहुत चिन्ता करती हैं। तुम बड़ी उदास रहती हो। इससे घर के और लोग भी परेशान हैं!"

वह माथा झुकाए कुछ पढ़ रही थी। अचानक उसका सिर ऊपर उठा, जैसे वह चौंक उठी हो और मेरी ओर गर्दन घुमा कर बोली, 'जी हाँ ! उनकी परेशानी का शायद यही कारण है। तो आप मुझे ज़रा ज़हर ला दीजिए, मैं खा कर मर जाऊं। मरने से पहले मैं इस बच्चे का गला भी अपने हाथों से घोंट दूंगी !' सोये हुए बच्चे की तरफ़ संकेत करती हुई वह बोली, 'जब मैं और यह नहीं रहेंगे, तो शायद किसी को किसी तरह की भी परेशानी नहीं रहेगी !'

मुझे लगा जैसे सुरजीत पागल हो गयी है। मैंने कहा, "यह क्या पागलों-जैसी बातें कर रही हो...क्या हुआ तुम्हें..."

"धू धू करके जल रही हूं मैं..."वह बोली, "ज़रा, ज़रा और तेल छिड़क दीजिए..."

"मैं अवाक् उसके मुंह की ओर देखने लगा। और कुछ बोलने का साहस न हुआ। बात क्या है ...! कुछ समझ में न आयी। फिर मैं लज्जित सा अपनी चारपाई पर लेट गया। मुझे सुरजीत से ऐसे कठोर उत्तर की आशा नहीं थी। किन्तु बात क्या है, इसी सोच में मेरे मस्तिष्क की उलझन बढ़ती गयी।

"उस रात सुरजीत ने बत्ती समय से पहले बुझा दी। कमरे में अंधेरा छा गया। मैंने सोचा, कल मैं मां जी से पूछकर इन बातों का भेद पाने का यत्न करूँगा।

"शायद तब आधी रात बीत चुकी थी, और अचानक मेरी आँख खुल गयी। मुझे कुछ सिसकियाँ सुनाई दे रही थीं। मैंने उठ कर बत्ती जलाई। देखा, सुरजीत सुप्त अबोध शिशु पर झुकी रो रही है। मैंने फिर बत्ती बुझा दी। अंधेरे में उनके निकट जा बैठा। मैंने प्यार से उसका एक हाथ पकड़ा। वह मुझसे लिपट कर दबे-दबे स्वरों में रोने लगी। उसके गरम गरम आँसू मेरी भुजाओं पर गिरते रहे। मैंने पूछा, 'बात क्या है! आज मैंने तुम्हें रोते देख ही लिया...इस प्रकार न जाने तुम पहले कितनी बार रोती रही हो...आखिर रोने का कारण... ? क्या तुम मुझे कुछ नहीं बताओगी!"

वह रोती रही। मैंने फिर कहा 'तुम बच्चे का गला घोंट देना चाहती हो! स्वयं जहर खा कर मर जाना चाहती हो...आखिर क्यों ?"

'मैं अभागिन हूं!' वह बोली, 'मैं किसी की तलवार के घाट न उतर सकी। जलते हुए घर की लपटें मुझे न झुलस सकीं। मुझ अभागिन को मौत नहीं आयी...इसलिए अब जहर खाकर मर जाना चाहती हूँ!'

'मैं अब भी नहीं समझा। क्या फिर तुम्हें किसी ने कुछ कहा है... मेरे विचार में वही पुरानी बातें फिर तुम्हारे कानों तक जरूर पहुँचती होंगी, जो ब्याह से पहले इस घर के लोगों के मुंह से तुमने सुनी थीं। तुम चिन्ता न करो। जो भी जो कुछ बोलता है, सब असत्य है ...सब झूठ है। तुम कितनी निर्दोष हो, और तुम्हारी आत्मा कितनी पवित्र है, यह मैं जानता हूं। मुझे तुम पर विश्वास है, तुम भी मेरी बातों पर विश्वास करो...... !'

"मैंने बच्चे को उठा कर छाती से लगा लिया। वह रोती रही। मैं फिर कहने लगा, 'अब मैं जान गया, तुम्हारे रोने और सदा उदास

रहने का क्या कारण रहा है!' वह रोती रही।

"दूसरे दिन मैंने घर वालों से उनके इस बर्ताव की शिकायत की। वे सब हाथ धो कर मेरे पीछे पड़ गये। भाई अतर सिंह, मैं अकेला था और शेष सारा घर एक तरफ़। मेरी कोई पेश न चली। मैं किसी प्रकार उन्हें यह विश्वास न दिलवा सका कि सुरजीत एक निर्दोष स्त्री है। वह बहते हुए गंगा जल के समान पवित्र है और इस घर की शोभा है। निदान, मुझे उनकी बातें सुन कर चुप रह जाना पड़ा। कुछ दिनों बाद मैं घर छोड़ कर अलग रहने लगा। रिश्तेदारों से मेरा कोई लगाव न रहा।"

उसकी नज़रें ऊपर उठीं। चलता–चलता वह काफ़ी दूर निकल आया था। संध्या की धूमिल छाया और घनी हो चली थी। बाग़ों के पीछे ईंटों के भट्ठे की चिमनी का धुआं गुब्बारे की तरह ऊपर उठ रहा था। सड़क पर अब राहगीरों की संख्या कुछ बढ़-सी गयी थी। एक नज़र उसने पास से हो कर जाने वाले कुछ बूढ़ों की ओर देखा और फिर माथा झुकाए आगे बढ़ने लगा।

"हाँ, तो भाई अतर सिंह, जब हम घर वालों से अलग हो चांदनी चौक में रहने लगे, तब वे हम से और भी चिढ़ गए। और बिलकुल हमारे विरुद्ध हो गये। सारे कुटुम्ब में हमें बदनाम किया जाने लगा। हमें हर ओर से बुरा–भला कहा जाने लगा, यहाँ तक कि पास–पड़ोस के लोग भी उँगलियाँ उठाने लगे। अपने अपनों के कैसे दुश्मन हो जाते हैं, यह मैंने तभी जाना और समझा। गर्ल्स स्कूल कमेटी के एक मेंबर हमारे मुहल्ले में रहते थे। उनकी विशेष दया और कृपा से सुरजीत की नौकरी भी गयी। अपने दफ्तर में दिल्ली से अमृतसर तबदीली की दरख्वास्त दे दी। कुछ दिनों के बाद मैं अमृतसर

आ गया। मुझे आशा थी कि अमृतसर में हम आराम से रह सकेंगे। दुनिया की आवाज़ यहाँ हमारी पीछा नहीं करेगी। समाज अब अनुचित रूप से हमारी ओर उंगली नहीं उठाएगा। और हुआ भी ऐसा ही, हम सुख से रहने लगे। सुरजीत को यहां एक स्कूल में अध्यापिका की जगह मिल गयी। पर एक वस्तु यहां आ कर मुझे न मिल सकी। उसके लिए आँखें और मन तरसता ही रहा। वह थी सुरजीत की मुसकान, जो मुरझाने वाले फूलों की भाँति हमेशा के लिए कुम्हला गयी थी।

"वह प्रायः मुझसे कहती, 'मैं भी कितनी अभागिन हूँ, जिसने आपकी दुनिया उजाड़ दी, और अपनों से हटा कर यहाँ ले आयी।'

"और मैं कहता, 'पगली, मेरी तो दुनिया ही तुमने आ कर बसायी!'

"फिर वह गर्व-मिश्रित हंसी के साथ कहती, 'पर सच कहना जी, आप अपने मन में मेरे बारे में क्या सोचा करते हैं, मैं हूँ न बुरी?'

'बहुत, हद से ज्यादा!' मैं हँस कर कहता, 'तुमने मुझे अपने वश में कर लिया है न!'

"उस समय वह मुसकराती हुई लज्जा से अपनी आँखें नीचे झुका लेती। थोड़ी देर बाद फिर जब मैं उसकी ओर देखता, वही उदासी उसके चेहरे पर होती और वही तिरस्कृति का रोष। मेरे लिए अब उसे समझना कुछ और कठिन होता जा रहा था। मुझे ऐसा लगता, जैसे हमारे परस्पर प्रेम का स्थान, अब केवल एक कर्तव्य ने ले लिया है। वह मेरे साथ केवल इसलिए रहने के लिए बाध्य है, क्योंकि वह मेरी पत्नी है। वह मुझसे बातें इसलिए करती है,

क्योंकि वह मेरी स्त्री है। वह कभी मेरे सामने इसलिए हंस और मुसकरा लेती है, क्योंकि अर्द्धांगिनी के नाते शायद यह उसका मंतव्य है, वरना वह मेरी कुछ भी नहीं।

"एक दिन, रात के समय जब हम एक पुराने गुरुद्वारे के दर्शन को गये, परिक्रमा करते हुए वह मेरे साथ एक शिला-लेख के पास आ खड़ी हुई। वहां से हट कर फिर वह पास ही एक संगमर्मर पर अंकित कुछ शब्दों को पढ़ने लगी। इसमें उस दानी व्यक्ति का नाम, ग्राम और उसके पिता का नाम अंकित था, जिसने पांच सौ एक रुपये परिक्रमा के संगमर्मर के लिए दान दिये थे। सुरजीत कुछ देर तक वहां खड़ी दानी पुरुष का नाम इत्यादि पढ़ती रहीं, और अचानक उसकी आंखें भर आयीं। उन्हीं भीगी-भीगी आँखों से उसने मेरी ओर देखा और देखती रही। मैं उसकी आँखों की मूक भाषा न समझ सका। कुछ पूछने का साहस भी नहीं हुआ। वह आगे बढ़ने लगी। मैं मौन उसके पीछे हो लिया। घर तक उसने रास्ते में मुझे से कोई बात न की।

"घर पहुँच कर भोजन के समय चित्त की खराबी का बहाना करके उसने भोजन भी नहीं किया। उसका वह बहाना मेरे लिए और भी परेशानी का कारण बन गया। तरह-तरह की शंकाएं मेरे मन में उठती रहीं। रात को चारपाई पर लेटे-लेटे मैं उसके बारे में सोचता रहा, कहीं मैंने इसे अपनी बना कर इसके साथ कोई अन्याय तो नहीं किया। जब से यह मेरे घर आयी है, वास्तव में मैंने इसे उदास और असन्तुष्ट ही पाया है... क्या इस भूल की निवृत्ति का कोई उपाय नहीं...? क्या मुझे पश्चाताप के रूप में सदैव संघर्ष ही में खोए रहना पड़ेगा...? दोष तो इसमें मेरा ही है, क्योंकि इसे दुःखों में मैं ही

घसीट लाया हूँ...मेरे अपनों से इसे क्या कुछ नहीं सुनना और सहना पड़ा, मैं गुनाहगार हूँ...मैंने ही ग़लतियां की हैं, इत्यादि। रात भर मैं सो न सका।

"दूसरे दिन मेरा सिर दुख रहा था। हल्का-सा बुखार भी हो आया था। मैं काम पर नहीं गया। मौन, बैठक में लेटा रहा। वह भी मेरे पास न आयी। सांझ को तो मैं बुखार से तप रहा था। रात को टेम्परेचर और अधिक बढ़ गया। दूसरे दिन सवेरे डाक्टर ने टाईफाईड घोषित कर दिया। मेरी अच्छी तरह देख-भाल होने लगी। पन्द्रह बीस दिनों तक तो मुझे कोई होश नहीं रही, इसके बाद जब मैंने आंख खोली, तो दिल्ली के अपने सारे परिवार को अपनी चारपाई के पास खड़े पाया। मां थीं, बहनें थीं और घर के अन्य लोग भी। सुरजीत बेचारी भी एक कोने में खड़ी थी। माँ बड़े प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई कह रही थीं, 'बेटा, तू अच्छा हो जाएगा ...आँख खोल, देख मैं दिल्ली से आयी हूं....वह देख, वह तेरी बहन है....वह मुन्नी. और वह देख तेरी चाची खड़ी है।' फिर सुरजीत की ओर संकेत करती हुई बोली, 'देख यह कलमुंही डाइन भी यहीं खड़ी है, जिसने तेरा कलेजा चाटा था। तू अच्छा हो जा बेटा, फिर हम इससे निपट लेंगे।' मैं अपनी फटी-फटी आखों से उस डाइन कलमुंही को देखने लगा, जिसने मेरा कलेजा चाटा था....ऊफ़! जब उससे नज़रें मिली, मेरा मन खिल उठा। वह तो देवी थी। वह देवी, जिसके रूप और गुणों पर मैं मुग्ध था। उसकी आंखों से आँसू झड़-झड़ कर नीचे फर्श पर गिर रहे थे। यह मुझसे न देखा गया और मैंने अपनी आँखें मूंद लीं।

"और थोड़े दिन पाकर मैं अच्छा हो गया। बुखार नहीं था,

लेकिन कमज़ोरी बहुत थी। अधिक चलने फिरने से मजबूर था। इस बीच, मैं सुरजीत को घर के अन्य लोगों के जमघट में बहुत कम देख पाया।

"एक दिन आधी रात के बाद वह दबे पांव मेरे पास आयी। उसका चेहरा किसी रोगिणी की भांति, शुष्क और पीला दिखाई देता था। वह मेरे पास आयी और मेरे पैरों पर गिर कर रोने लगी। वह खुलकर रो भी नहीं सकती थी। उसकी दबी घुटी सिसकियाँ मेरी छाती पर हथौड़ों की तरह चोट पहुँचा रही थीं।

"मैंने संकेत से कुछ निकट होकर बैठ जाने को कहा। फिर उससे बोला, 'तुमने अपना यह क्या हाल बना रखा है?'"

"वह मौन रही और आँसू बहाती रही।

मैंने फिर कहा, 'कुछ बोलो, मैं तुम्हारे मुँह से कुछ सुनना चाहता हूं।'

"उत्तर में वह बोली, 'मैं आपसे धर्मशाला जाने की अनुमति लेने आयी हूं।'

"मैंने पूछा, 'क्यों, वहां क्या काम है?'"

"वह बोली, 'वहाँ मेरे एक दूर के रिश्ते के चाचा रहते हैं.... वे बीमार हैं।'

'चाचा!' मैंने आश्चर्य से पूछा, 'तुमने पहले कभी इसकी चर्चा नहीं की।'

वह बोली, 'उनके ठिकाने का मुझे हाल ही में पता चला है। फिर आप तो माँ जी के साथ दिल्ली चले जाएँगे। मैं केली ही

यहाँ रह जाऊंगी। स्कूल में भी छुट्टियाँ है..., अच्छा है, यदि धर्मशाला वाले चाचा के पास चली जाऊँ, समय भी कट जाएगा।"

"मैं चिन्ता में खो गया। अकेले बेचारी कहाँ भटकती फिरेगी, काश, मैं इसके साथ जाने के योग्य होता। मौन सोचता ही रहा। सहसा मुझे वह रात याद आ गयी, जब हम गुरुद्वारे से पलटे थे, और सुरजीत ने चित्त की खराबी का बहाना करके खाना नहीं खाया था। मैंने कहा, 'जीत, यदि तुम धर्मशाला जाना चाहती हो तो चली जाना, किन्तु मुझे एक बात तो बताओ! उस दिन तुम गुरुद्वारे में वह शिला लेख पढ़कर मुरझा क्यों गयी थीं—रोने क्यों लगी थीं.....जिस सज्जन का नाम उस संगमर्मर पर खुदा हुआ था, क्या तुम उसे जानती हो?" उसने 'हाँ' के अन्दाज में माथा हिला दिया।

'कौन है वह तब?' मैंने प्रश्न किया, 'क्या कोई अपना आदमी है?"

"हाँ" उसने रूंधे हुए कंठ से उत्तर दिया।

'कौन हैं वह?' इस बार मैंने कुछ शंकित होकर पूछा।

उसने बड़ी कठिनाइयों से भराए हुए स्वर में उत्तर दिया, 'मुन्ने का पिता.....पाँच वर्ष पहले हम इसी गुरद्वारे के दर्शन को आये थे। तब यह मुन्ना जनमा नहीं था।" वह चुप हो गयी! मेरी आँखों के सामने कमरे का अन्धकार और घना हो गया। मेरे मुंह से और कोई बात न निकल सकी। मैंने टार्च की सहायता से दीवार पर लगी घड़ी में समय देखा। रात का एक बज रहा था।

"भाई अतरसिंह, एक सप्ताह बाद मैं दिल्ली ले आया गया। वह घर वालों की जली कटी सुनती हुई धर्मशाला चली गयी। धर्मशाला जाकर वह कहां रही, किसके पास रही, वहाँ उसका कोई चाचा था भी या नहीं, या केवल बहाना ही करके गयी थी मुझे कुछ पता न चला। क्यों कि मुझे उसकी कोई चिठी नहीं मिली थी। मैंने कुछ पता लगाने का यत्न भी किया तो सफलता न मिली। हाँ दो महीनों के बाद मुझे तुम्हारी चिट्ठी अवश्य मिली थी भाई अतरसिंह, जिसे पढ़ कर मैं अमृतसर दौड़ आया। यहाँ आकर मैंने अपनी सपनों की रानी सुरजीत की अस्थियां देखीं। वह एक महीने से टाइफायड से पीड़ित थी। उसने रोग शय्या पर पड़े पड़े मुझे कई बार याद किया था। कई पत्र लिखवा कर डाले थे। किन्तु घर वालों की कृपा से वे पत्र मेरे पास नहीं पहुँचते रहे। मरने से पहले उसने मुझसे संबन्ध विच्छेद कर लिया था। इसका कोई विशेष कारण मेरी समझ में नहीं आया। हां, इतना मैं जानता हूं कि जब मां मुझे दिली ले जा रही थी, तब उन्होंने उसे कुछ उलाहने देते हुए यह भी कहा था, "तुमने अपने लड़के को मेरे बेटे के रुपयों का हकदार बनाने और आप मज़े से मौज लूटने के लिए ही तो उससे ब्याह किया है, और उसे कुछ दे दिला कर मार डालना चाहती थी। किन्तु कलमुंही, तू सफल नहीं हो सकी। अब मेरा बेटा तेरा मुंह फिर कभी नहीं देखेगा।"

"मैं फटी फटी आंखों से शमशान में उस निर्दोष देवी की चिता की राख में बिखरे हुए फूल देखता रहा। मेरी आँखों से टप-टप आँसू नीचे झरते रहे। मुझे सुरजीत भी चीखें मार-मार कर रोती सुनाई दे रही थी,। वह नहीं, उसकी आत्मा रो रही थी। वे अस्थियां रो रही थी, जिन्हें मैं चिता की राख से उठा-उठा कर मिट्टी के एक बर्तन में रख रहा था। मैंने जली-भुनी हड्डियों से

भरी वह हांडी उठाकर जब अपनी छाती से लगायी, तब मुझे कुछ धैर्य बंधा। तब संध्या ही का समय था और सूर्य पश्चिम की ओर डूब चुका था, मैं पागलों की तरह नहर की तरफ बढ़ा चला जा रहा था, चिता की राख बहाने के लिए—उस नहर में, जो व्यास से निकलती है, और वह व्यास, जो पावन हिमालय की गोद से उद्भूत होती है। सुरजीत मुझसे और दूर जा रही थी। वह मेरे जीवन में एक सपने की तरह आयी थी, और मानो आंख खुलते ही लोप हो गयी।

"मुझे याद है, जब तुमने मुझे 'फारखती' पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा था, तब मैंने गुस्से से उसे फाड़ डाला था। कागज़ का वह टुकड़ा कैसे मुझसे मेरा अधिकार छीन सकता था। मेरा तो सब कुछ लुट ही गया था। बच्चा सुरजीत द्वारा ही अनाथालय में दाखिल कर दिया गया था। मैं उसे लौटा लाया था।

"भाई! उसे मरे आज लग-भग पांच वर्ष बीत चुके हैं। आज ही की तारीख की वह मनहूस संध्या थी, जब मैंने उसकी चिता की राख नहर में बहायी थी। आज मैं फिर भूला-भटका इस ओर निकल आया हूं। मैं थक चुका हूँ। और मेरे पांव आगे नहीं बढ़ रहे हैं।"

सहसा सड़क पर एक बवंडर-सा घूमता हुआ, फिर उसके चारों ओर एक चक्कर काट कर, आगे निकल गया। वह चलता-चलता तन्द्रिल मनुष्य की तरह चौंक उठा। उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे अतर सिंह वसीकाजनवीस की आत्मा अब उससे विदा हो, नाशपातियों के बाग़ की ओर निकल गयी है। वहां सघन वृक्षों की छाया में काफ़ी अंधेरा फैल चुका था। उसने देखा, सामने

नहर थी, और अगल-बगल दो छोटे सूए यानी छोटी नहरें। वह आगे बढ़ा और पुल पर जा कर बैठ गया। एक ओर पनचक्की चल रही थी, जिसकी घरघराहट से सारा वातावरण किसी बूढ़े रोगी की भाँति खांसता और खंखारता प्रतीत होता था। दूसरी ओर टकरा कर गिरने वाला नहर का पानी कर्कश नाद कर रहा था। वह उस स्वर में खो–सा गया। प्रवाह में कितनी शक्ति है, और शक्ति में कितना संचार! किन्तु चिता की राख और कुछ अस्थियाँ इस जल में गिर कर बह जाती हैं। कोई शक्ति उन्हें दोबारा 'सुरजीत' नहीं बना देती!

नहरों के उस पार खेत थे। खेतों से परे गाँव। खेतों में काम करने वाले किसानों के बैल, और साथ ही बैलों के गले की घंटियों की आवाज़ रह-रह कर उसे चौंकाने लगी। वह अंधेरे में प्रत्येक वस्तु को फटी–फटी आँखों से देख रहा था। किन्तु उसकी दृष्टि कहीं टिकती नहीं थी। रह रह कर प्रवाहित फेनिल जल की ओर झुक जाती थी।

कुछ देर बाद उस ओर से एक ताँगा गुज़रा। तांगे वाले ने तांगा रोक कर उससे पूछा, "सरदार जी, शहर चलिएगा?" वह चौंक उठा। मुंह से कुछ न बोला, और मौन उठ कर तांगे में आ बैठ गया।

तांगे वाले ने पूछा, "कहां चलूं, सरदार साहब!"

"कम्पनी बाग़!" उसके मुंह से निकला। ताँगे वाले ने एक बार अपना चेहरा घुमा कर उसकी तरफ़ देखा और तांगा हांक दिया।

आधे घंटे में तांगा कम्पनी बाग़ की सड़कों पर घूम रहा था। और थोड़ी देर बाद तांगा युनाइटेड क्लब के गेट पर खड़ा था।

और जैसे ही वह उस पर से नीचे उतर कर लड़खड़ाता-सा दो पग आगे बढ़ा, "हैलो !" एक स्वर ने जैसे उसे 'ब्रेक'-सा लगा दिया। देखा, तो मिस अदला बगल में खड़ी थी। "ओह डीयर ! आज फिर तुमने देर कर दी...राह देखते-देखते मेरी आंखें पथरा गयीं !" आगे बढ़ कर मिस ने अपने हाथों का सहारा दिया। "ओह ! आज शायद तुमने कुछ पी रखी है!"

वह मुंह से कुछ नहीं बोला और निढाल-सा उसके साथ चलता गया। अन्दर 'हाल' में साज़ों की धुन बज रही थी, और जूलिया अपनी मधुर लय में एक गीत आरम्भ कर चुकी थी। गीत भावोत्पादक था, जिसके आरम्भ के बोल थे —।

"प्रिय यदि तुम पाषाण-हृदय न होते, तो मेरे गीतों में भी करुणा न होती !"

देव दत्त कौशल

ताज़े फूल
बासी रोटी

युग की आवाज़

देवदत्त कौशल

ताज़े फूल बासी रोटी

कल रात भी बारिश बरसी थी। आज का काफ़ी से ज्यादा दिन बगैर बारिश के ही गुज़ारा, बादल ज्यों के त्यों बने रहे। अब फिर रात है।

रज्जू को याद आया कि दिन में दरया के किनारे एक साफ़, खुली, ठंडी चट्टान पर बैठ उसने सुरमई रंग के आकाश की ओर देखा था—अपने चौड़े पर फैलाए चीलें उड़ रही थीं। ऊपर देखते देखते गर्दन दु:खने लगी थी, तब वह पानी की ओर निहारता रहा, निहारता रहा—इक्की दुक्की मच्छलियाँ जल में तैर रही थीं। तब उसने सोचा था—धरती पर इन्सान रेंगता है, बिलबिलाता है......

आकाश में एक भयंकर सी आवाज़ हुई थी। हवा को चीरता हवाई जहाज़ कहीं दूर ओझल हो गया था। फिर कहीं पास ही छप-छपा-छप् की आवाज हुई। पानी को पीछे धकेलते चप्पू कश्ती को आगे ढ़केल रहे थे।

मैं भी—हम भी—ऊपर उड़ना चाहते हैं; सम्भव नहीं, मुंह

के बल धरती पर गिरते हैं। तैरना चाहते हैं, अशक्त हाथ साथ नहीं देते, डूब जाते हैं। यथार्थ के थपेड़ों के आघात सहते हुए भी हम जीते हैं, शायद और नीचे धंसने के लिये! सिर तक डूबे हुए भी हम जीते हैं, शायद तल से जा लगने के लिये!!

बस रज्जू को इतना भर याद हो आया। फिर जल्दी ही उसने इस याद को मिटा दिया। फिर भी याद की मद्धम-सी शक्ल बनी रहीं।

अब रात है।

ठंडी रात बारिश में भीग रही है। आंगन के कच्चे फर्श पर पड़ती बारिश की बूंदों के संगीत को, सामने के मकान के टीन के छज्जे पर पड़ती बूंदों की कर्कश ध्वनि लील रही है।

...उस समय रज्जू का मन जाने कैसा-सा हो रहा था। उसने स्वयं को रोका। नहीं, उसे 'था' के बारे में नहीं सोचना है। 'है' का सवाल ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस 'है' को सोचने की कोशिश में वह 'क्या होगा' की ओर भाग चला। फिर जैसे उसने अपनी लगाम खींची, और निस्पंद-सा हुआ बैठा रहा।

रज्जू का मन कोफ्त से भर उठा। पढ़ाई में एकाग्रता बनाये भी नहीं बन पड़ रही थी। बेसिलसिलेवार हो रही बातों ने, रज्जू के मन को एक अपारता, एक व्यर्थता और एक अनास्था के भाव में खोभा रखा था।

पढ़ना होगा। पढ़ना चाहिए। पर कैसे? लगा उसे कि यह टीन के छज्जे पर से जन्मी बारिश की कर्कश ध्वनि, उसकी पढ़ाई में बाधा बन रही है। उसका ध्यान बरबस अपनी ओर खींच-खींच ले

जा रही है। दिल और दिमाग पर चोट किये जा रही है। ऊफ़ !

इस कर्कश ध्वनि को अनसुना कर, उसने अपने को पढ़ाई में डुबा रखना चाहा। लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं। यह कर्कश ध्वनि ...प्रताड़ित और प्रपीड़ित यह टीन का छज्जा कराह रहा है। कराहए जा रहा है।

लाजो भी कराहती है, सिसकती है, बेदम हो सब सहने को पड़ी रहती है। वह बेचारी है, औरत है ! मनसा—उसका पति—भी अपने बेडौल से खुरदरे हाथों का प्रयोग अकसर उस पर करता है, कि इस लाजो के बेदम हो पड़ी रहने में खैर है, क्योंकि पंछी दम रहते उड़ जाया करते हैं। वह क्रूर है, मर्द है।

मनसे की लाजो तीसरी पत्नी है। पहली पत्नी बहुत जल्दी ही, एक मरी हुई संतान को जन्म दे, जीवन की कारा से मुक्त हो गयी थी। दूसरी पत्नी वह तीन सौ रुपये में ले कर आया था। सच, तीन सौ रुपये उसने कितनी मुश्किल से इकट्ठे किये थे ! लेकिन वह किसी के साथ भाग गयी। तीन सौ रुपये अकारथ गये—मनसे को बहुत दुःख हुआ था। लेकिन इस मनसे ने हिम्मत नहीं हारी—तलाश में रहा, एक नयी पत्नी की बराबर तलाश में रहा !

मेहनत बर आयी। एक पंथ, दो काज वाली बात चिरतार्थ हुई। एकमात्र बहन के विवाह की समस्या भी हल हुई, और अपनी भी। और इस प्रकार अट्टे-सट्टे में लाजो ने इस मनसे की पत्नी के रूप में इस घर में पदार्पण किया।

इस अन्धेरे घर की नहूसत ने लाजो के सौन्दर्य पर बहुत असर नहीं डाला। आज भी वह मैली-कुचैली रहती हुई खूबसूरत है। भरे-भरे अंग है—गदराये-से, चिकने-चिकने। बड़ी-बड़ी आँखें हैं—चाँद की

फाँक-सी, उजली-उजली । उभरा-उभरा वक्ष है—रस से भरे फलों-सा ! लाजो जवान है !

मनसा सुन्दर किसी समय में भी न रहा हो, पर ताज़े रक्त का संचार उसमें रहा है। लेकिन पत्नियों की तलाश के दौरान में, उसने अपने विधुर जीवन की रातें कोठों पर गुज़ारी हैं। शराब और उन कोठों ने उसे असमय में बुढ़ापा दिया, बदले में उसने दौलत दी, अपना यौवन दिया। यह मनसा—कच्ची काजल सा रंग, ढलके अंग, निचुड़ी संगतरे की फाँक-सा—आज बूढ़ा है।

बस मनसा बूढ़ा है। लाजो जवान है। मनसा पीटता है। लाजो कराहती है।

रज्जू को याद आया, यह मनसा कभी स्कूल में पढ़ता था तब वह किसी छोटी क्लास में था, और मनसा स्कूल की सब से बड़ी क्लास में, जिसे वह कभी भी पार नहीं कर सका—तब उस की मां जिन्दा थी, बाप जिन्दा था। तीन आने हर रोज़ खर्च करने को मिलते थे। बड़ी अकड़ से रहता था।

रज्जू को और भी याद आया कि एक दिन स्कूल से लौटने पर मां ने इसे सुबह की बनी ठंडी रोटी परस दी थी। तब वह बहुत बोला-बुड़बुड़ाया था। रौब दिया था कि वह स्कूल से पढ़ कर आता है और उसे ठंडी रोटी परसी जाती है ! लेकिन आज......

आजकल लाजो छः बजे ही खाना बना कर निवृत हो जाती है। मनसा साढ़े दस-ग्यारह बजे घर आयेगा। घर के सामने आ, ज़ोर से खंगार कर, थूक का मोटा-सा गुल्फा फेंकना उसका नियम-सा बन गया है। कुंडी खटखटाएगा। दरवाजा खुलने में देर हुई तो बुरी-भली दो-चार लाजो को सुनाएगा। गुस्से में कहेगा—"अन्दर अपने

किस . खसम के साथ पड़ी थी।" कड़वे घूंट-सा लाजो सब पी जाती है। जैसी-तैसी रोटी उसके सामने पटक देती है। वह गुर्राता हुआ खाता रहता है।

रज्जू जानता है कि एकाध बार ऐसा हुआ हो, तो शायद हुआ हो, पर अकसर रात में लाजो की घुटी-घुटी आवाज़ों में सिसकना नहीं पड़ता है। मंनसा भी अपने खुरदरे हाथों के प्रहार से उसे बेदम नहीं करना चाहता है। इस समय दोनों में एक आदत-सी सुलह बनी रहती है। रात एक व्यवस्था में कटती है। कटती ही जा रही है।

नालियों में कीड़े कुलबुलाते जा रहे हैं!

अब रात है। मनसा सोया है। लाजो सोयी है। लाजो खामोश है। लेकिन टीन का छज्जा कराह रहा है। कराहए जा रहा है। यह टीन का छज्जा...

प्रहार पड़े तो एक भय मिश्रित भद्दी सी आवाज का निकलना स्वाभाविक है।

बारिश बड़े जोर की है। बीच-बीच में धीमी भी हो जाती है। पर बराबर पड़े जा रही है। बाहर भी बारिश, अन्दर भी बारिश...

यह बारिश जल्दी जल्दी रुकेगी नहीं। रज्जू ने कमरे के चारों ओर दृष्टि फैलाई। बड़ी शान से तीन चौथाई कमरा टपक रहा था—टप टिप टप। बाकी एक चौथाई कमरा इस तरह, जिस में एक चारपाई, जिस पर मां सोयी है, बाकी हिस्से में एक मेज़, मेज़ के सामने एक टीन की कुर्सी पर बैठा रज्जू!

रज्जू माँ की ओर देखता रहा, एकटक देखता रहा। लिहाफ़ में सिर मुंह लपेटे मां सोयी है, गहरी नींद सोयी है। नींद में डूबा यह क्लान्त शरीर......

मां बूढ़ी हो गयी है। थक जाती है। थक कर भी काम करती रहती है यह बूढ़ा शरीर एक दुःख दर्द के लम्बे इतिहास को अपने में समेटे है। इसने कभी किनारा नहीं देखा। लेकिन इस विश्वास को वह निश्चय से लिये बैठी है, कि उसका रज्जू एक दिन उसे किनारा दिखायेगा। उसकी सारी आशाएं रज्जू पर आकर केन्द्रित हो गयी हैं।

रज्जू ने अपने में एक हीनता अनुभव की। और सोचा, यह आशा का धागा कितना कच्चा है! यह केन्द्र कितना निर्बल है!

तभी रज्जू को सुबह की याद हो आयी। माँ का चेहरा सामने उभर आया—एक बेइन्तहा बेबसी में नहाया हुआ वह चेहरा! इतना जरूर था कि आंसू आंखों के प्यालों से छलक नहीं पड़े थे— "बेटा कोई इंतजाम नहीं हुआ!"—तब मां अपनी कलाई की ओर देखती रही थी। वह कलाई सूनी थी। कभी वहां चूड़ियाँ रही थी। गले में कभी हार भी रहा था, और कानों में बुंदे भी। लेकिन आज वहां कुछ भी नहीं है।

रज्जू के सामने अब तक किताब खुली पड़ी थी। उसे वह किताब बुरी लगी, बहुत बुरी। किताब कुछ और ही है। किताब कालेज की उस ऊंची और भव्य इमारत के लिये है, जो फूलों से घिरी है! जीवन इस टूटे मकान में घिरा है, जहां रिहायश का कमरा भी टपकता है।

अपने आप को ज़लील बना कर भी जब माँ 'इन्तजाम' करने में सफल नहीं हो पाती, तो रज्जू कैसे पढ़ सकता है? आखिर कैसे?

रज्जू के चेहरे पर एक कलिमा सी पुत गयी। रात भी काली है।

पाँव से लेकर सिर तक एक कम्पकम्पी सी दौड़ गयी। ऊफ़! कितने जोर का धमाका था! टीन के छज्जे की कर्कश: ध्वनि को रौंदती एक भयंकर सी आवाज हुई, जैसे रात चीख उठी हो।

बारिश में किसी का मकान गिरा। भगवती का मकान गिरा! नहीं मकान का एक हिस्सा गिरा। हर बारिश में वह गिरता है। किसी को कोई फ़र्क नहीं पड़ा। रात फिर उसी तरह से खामोश हो गयी। सिर्फ़...टीन के छज्जे की आवाज़......

भगवती भी आराम से सोई रही होगी। वह कमरा अभी सुरक्षित है।

भगवती बुरी है—मुहल्ले वाले कहते है, और इसके लिये वह कई प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। पर रज्जू केवल इतना जानता है कि वह किसी लड़कियों के प्राईमरी स्कूल में कच्ची-पक्की की लड़कियों को पढ़ाती है। वह अध्यापिका है!

यह विचार आते ही बरबस रज्जू के चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कराहट खेल गयी—वह अध्यापिका है! जब कभी भी कहीं कोई ख़त लिखना होता है, कहीं से कोई ख़त आता है, वह रज्जू के पास आती है। ख़त वह लिख नहीं सकती, ख़त वह पढ़ नहीं सकती! वह अध्यापिका है!

रज्जू की मां के पास अक्सर वह आती-जाती रहती है। रज्जू के प्रति स्नेह भी व्यक्त करती रहती है। दुलार में कहती है—"हमारा रज्जू प्रोफेसिर बनेगा।" और 'प्रोफेसिर साहब' कह कर ही उसे बुलाती

। है रज्जू इस दुलार के खोखलेपन को जानता है। जानता है कि

इस में कोई सार नहीं, तथ्य नहीं । फिर भी उसके अन्तर में कहीं प्रसन्नता हिलोरें ले उठती, और बाहर से वह अनजाने में ही मुस्करा देता है ।

यह भगवती अपने समय में बड़ी चुलबली रही है । इस की सखियों के ब्याह होते गये, उनके दुल्हों को देख कर वह हंसती-हंसती लोट-पोट हो जाती थी । उनकी शकल-सूरत...मजाक में वह व्यंग्य के तीखे बाण सजाती थी। लेकिन जब अपनी बारी आयी तो वह हंस नहीं सकी । अपनी हंसी तो वह दूसरों पर लुटा चुकी थी । वह रो सकती थी। लेकिन रोने से भी कै दिन काम चलता ? सो उसने हालात के साथ समझौता कर लिया। लेकिन समझौता भी उसे बहुत दिन बनाए नहीं रखना पड़ा । एक दिन विधवा हो कर, रोती-रोती मायके आ गयी ।

यह बात तो अब बहुत पुरानी हो गयी है। मां-बाप भी उसके नहीं रहे हैं। अब वह अकेली है। अध्यापिका है !

इसी भगवती के मकान का एक हिस्सा गिर गया है ।

रज्जु को यह सब सोचना भला नहीं लगा। नीचे लटकती टाँगों को उसने कुर्सी पर ही समेट लिया, बाहों में सिर को दबोच कर सामने मेज़ पर पड़ी किताब पर टेक दिया ।

उसे कुछ राहत मिली !

रात कितने धीमे-धीमे बह रही है, जैसे पेट के बल रेंग रही हो ! यह बह रही है कि खड़ी है ?

सेठ राम जी को भी अपनी दुकान से मकान, और मकान से दुकान तक पहुँचने में कितनी समय लगता है। ैसे की गर्मी ने

उन के शरीर को इतना फैला दिया है, कि अब उनके लिये वह सम्भालना मुश्किल हो रहा है। चलते-चलते थक जाते हैं। दम फूल जाता है। रास्ते में कई जगह आराम लेना पड़ता है। लेकिन पैसा बहुत बड़ी चीज़ है। और सेठ राम जी के लिये पैसा ही सब कुछ हैं।

लेकिन सेठ जी की यह लड़की प्रभा कैसी है कि सेठ जी का मेहनत (? की कमाई में से हर माह तीस रुपये फ़जूल में बर्बाद कर देती है।

रज्जू ने सोचा, लड़की अच्छी है। पर बेवकूफ है। सेठ जी के पैसे बर्बाद कर रही है।

यह प्रभा दो साल पहले मैट्रिक में पढ़ती थी, पर इम्तहान न दे सकी। कुछ ऐसी जरूरत आ पड़ी कि इसे इसकी माँ किसी दूसरे शहर में ले गयी। वहाँ इसका अपना एक परिचित डाक्टर था। बस सब ठीक हो गया।

बात को काफी छिपाकर रखा गया था। पर कहीं खून भी छिपाए छुपता है! यहाँ भी तो खून ही हुआ था! सो नहीं छुपा, नहीं ही छुपा।

श्रीमती और श्रीमान राम जी को अब यह पराया धन सम्भाले रख सकना मुश्किल नजर आया। लड़के की खोज खबर ली जाने लगी। लड़के ऐसे कि उन्हें पढ़ी लिखी चाहिए। और जब उस बात की भनक मिल जाए—तो न पढ़ी हुई, न वगैरह पढ़ी, कुछ चाहिए ही नहीं। बड़ी मुश्किल पड़ी।

हालत जब ऐसी हुई तो सेठ दम्पित ने निश्चय किया, लड़की को

पढ़ा ही देना चाहिए। पर जब दूध का जला छाछ फूंक-फूंक कर पीता है, तो सेठ दम्पति ही प्रभा को दोबारा स्कूल भेजने का खतरा कैसे मोल लेते ? घर पर मास्टर...? जमाना बुरा है ! किसी का क्या भरोसा। जो नहीं देखा सो भला...

तो भी प्रभा की माँ रज्जू की माँ के पास आयी थी। इस बात का ढेर सा अहसान भी लाद गयी कि ट्यूशन देकर मदद की जा रही है, कुछ रोब भी, कुछ ताकीद भी, कि "जमाना बुरा है, बहिन ! पर रज्जू तो अपना ही है।...बुरे ज़माने में अपना भी क्या, पराया भी क्या...क्या भरोसा किसी का...। पर रज्जू...रज्जू घर का ही आदमी है, अपना ही है।"

सो इस बुरे ज़माने में अपना रज्जू प्रभा को पढ़ाने लगा।

पाँच पाँच रुपये लेकर तीन लड़कों को इकट्ठे पढ़ाते पढ़ाते रज्जू थक जाता है। चूर हो जाता है। तब सेठजी के मकान पर जा कर प्रभा को पढ़ाना, उसे विश्राम देता है, राहत और सकून भी...तीस रुपये भी तो मिलते हैं।

एक अलग थलग बैठक है, जो शायद मिलने जुलने वाले व्यक्तियों के लिये बनाई गई होगी। पर ऐसे व्यक्ति तो सेठ जी को दुकान पर ही मिलते है सो सारा दिन बंद रहती है। पढ़ाते समय भी बंद ही होती है।

शुरु शुरु में पढ़ाते समय प्रभा की माँ पास बैठी बीज निकालती रहती थी। पर अब रज्जू पर जो अपना ही है, काफी विश्वास कर लिया गया है।

बैठक कुल मिलाकर लदी २ सी है, एक बोझ से भाराक्रान्त सी। बैठक में कौच, कुर्सियां, मेज़, एक छोटी सी मेज़ पर रेडियो,

एक ओर को पलंग भी, फ़र्श पर कालीन बिछा है, गाव तकिए भी हैं; दीवार भरी पड़ी है—तस्वीरों और कैलेंडरों से, चीनी औरतों से लेकर महात्मा गांधी तक के; एक अभिनेत्री की भी तस्वीर है, जिसने यों तो अपने शरीर को वस्त्रों से आवृत किए रखा है, पर अंग बाहर झांक-झांक जाते हैं। कई अलमारियां हैं, जो बही खातों से भरी पड़ी हैं।

पर रज्जू को यह सब बुरा नहीं लगता। वह यहां अपने को बहुत हल्का-सा महसूस करता है। और पढ़ाने को जो जी में आये पढ़ाते रहो; पढ़ाते रहो, क्योंकि पढ़ने वाला तो पढ़ ही नहीं रहा होता।

रज्जू ने सोचा यह लड़की कैसी है? कैसी बच्चों की-सी नादान बनती है! क्या सचमुच यह बच्ची है? नादान है?

एक दिन अचानक उसने रज्जू से पूछा—"मास्टर जी! वह एक इम्तहान होता है न, जिस को पास कर एकदम अफसर बन जाते हैं! वह आप कब पास करेंगे?"

रज्जू देखता रहा, इस अपनी शिष्या को देखता रहा। जाने यह क्या-क्या सोचती है। जाने कहां-कहां के सपनें लेती है।

रज्जू पढ़ाता रहा, अनमना-सा हो पढ़ाता रहा। कभी फिर उधर से आवाज़ उठी—'मास्टर जी...'

रज्जू किताब की ओर देखता रहा, और कहा—'हूँ'—लेकिन रज्जू स्वयं जानता है कि जब तक वह अपनी इस शिष्या की ओर नज़र उठा कर नहीं देखेगा, तब तक 'हूँ' का जवाब नहीं मिलेगा। बात पूरी नहीं की जावेगी।

रज्जू ने ऐसा ही किया। तभी उसने बाएं कन्धे पर चेहरे को ढुलकाते हुए, अटक-अटक कर, और कुछ मचल कर यों कह दिया—"मास्टर जी! पढ़ने को जी नहीं करता।"

रज्जू ने सोचा—चलो ठीक है। आज वह खुली हवाओं में सैर करेगा। पार्क में जायेगा, पार्क के उस हिस्से में जहाँ फूल खिले हैं। बस वह आराम से सैर करेगा। रोटी की फिक्र नहीं। मां बिमार है, सो वह सुबह ही बना आया था। हां, फल ले जाने होंगे मां के लिये। फल महंगे होते हैं!

रज्जू किताब बंद कर, उठ कर चलने को हुआ ही था, कि एक नयी फरमाइश हुई—"गाने सुनते हैं। रेडियो लगाऊं..."

अपनी शिष्या का अनुरोध मास्टर जी को मान्य न हुआ, उठते हुए उन्होंने कहा—"नहीं"

शिष्या को दुःख तो हुआ ही। पर मास्टर जी को जाते देख उसने कहा—"जाना नहीं होगा। बैठ कर पढ़ाइए।" इस कहने में रौब नहीं था, आज्ञा नहीं थी। बस एक याचना थी—कि "ओ ज़ालिम! गाने नहीं सुनने तो न सुन। पर सामने बैठा तो रह, बेशक किताब की रूखी-रूखी बातें उगलता रह!"

रज्जू भी इस बात को जानता है कि यह प्रभा पढ़ने के लिये उसके सामने नहीं बैठी रहती है।

रज्जू को इस लड़की पर बड़ी हैरानी हुई। दया भी आयी। अफसरों के सपने लेती है। शायद वह नहीं जानती कि जल्दी ही एक दुहाजू के साथ उसकी बात पक्की होने वाली है। लड़का अच्छा है। नौकरी ठिकाने पर है। उम्र कुछ बड़ी है, पर क्या हुआ, बोझ तो

हल्का होगा सेठ-सेठानी का ! यह सब रज्जू की मां ने रज्जू को बताया था ।

रज्जू थक गया, यह सब सोचते-सोचते थक गया। उसे लगा उसके दिमाग की नसें फूल रही हैं, और वह फट जायेंगी ।

वह उसी प्रकार किताब पर सिर टेके, आंखें बंद किए पड़ा रहा।

उसने सोचा कि अगर वह भी दमयंती और विद्या की तरह दहाड़ कर, जो भी उसे बुरे लगते हैं उनको जी भर कर कोस सकता, सारे बाज़ार को पंचमस्वर में अपना रोना सुना सकता, तो उसको इतनी घुटन अनुभव न होती, जितनी इस समय हो रही है। इतनी तड़पन न होती—न होती !

यह दमयंती और विद्या लड़ती हैं कि मुहल्ले को सिर पर उठा लेती हैं। कितनी अजीब-अजीब बातें करती है। तब दमयन्ती अपने पति और बेटों का (छः साल के बेटे का भी) विद्या के साथ, और उसकी बेटियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करेगी। ऊंचे-ऊंचे बोले जायेगी। बके जायी।

विद्या अपने मकान के समाने चोत्तरे पर बैठी चर्खा कातती रहेगी। दमयन्ती चुप हुई नहीं कि विद्या चर्खा एक ओर खिसका मैदान में उतर आयेगी। उसी प्रकार बोले जायेगी। बके जायेगी।

इसी तरह उस दिन सोते समय तक इन्हें फिट आते रहेंगे।

यह रेंगते हुए इन्सान...यह बिलबिलाते हुए कीड़े......

रज्जू ने चाहा कि सारी शक्ति को केन्द्रित कर वह इतने जोर से चीखे, कि इस बारिश की आवाज़, और इस टीन के छज्जे की

कर्कश-ध्वनि को रौंदती हुई वह चीख सब ओर फैल जाये। इस मुहल्ले के वातावरण पर वह स्थाई रूप से छाई रहे।

लेकिन रज्जू ने स्वयं अपनी असमर्थता अनुभव की। उसमें शक्ति ही इतनी कहां है? रुखी-सूखी, आधे पेट खाने वाले व्यक्ति में आवाज़ कहां है?

किताब पर से सिर उसने उठा लिया, टांगे नीचे फैला दीं।

बारिश धीमी हो चली थी। टीन का छज्जा अब कराह नहीं रहा था, सिसक रहा था। रात काली थी।

माँ कह रही थी कि कोई इतंज़ाम नहीं हुआ है। लेकिन माँ ने यह भी तो कहा था कि वह कल पटवारी की बहू के पास जायेगी, शायद वह सूद पर कुछ पैसे दे दे।

रज्जू का मन माँ के प्रति एक असीम ममता से भर उठा। और उसने चाहा कि मां के गले से लिपट जाये। लिपट कर कहे—"मां, तेरा रज्जू तुझे एक दिन आराम के दिन दिखाएगा।"

ऐसा कुछ कहने की इच्छा उसकी कई दफा होती है। परन्तु वह कह नहीं पाता। जाने आवाज कहां डूब जाती है।

उसने माँ की ओर देखा। माँ गठरी बनी सो रही थी।

गठरी का विचार आते ही उसके समूचे शरीर में एक झुरझरी-सी दौड़ गयी। शरीर कांप गया।

इस सुदामे की जब नौकरी छूट गयी, तो वह अपनी माँ को बहुत तंग करता रहा। उसकी माँ भी जैसे तैसे काम चलाती गयी। और

जब न चला सकी तो....—तो वह रही भी नहीं। गठरी में बाँध कर सुदामा उसे दरया में छोड़ आया—मुहल्लों वाले ऐसा कहते हैं।

यह मुहल्ला...जैसे यहां इन्सान नहीं, प्रेतआत्माएं बसती हैं। उन से वह घिरा है। स्वयं भी तो वह उन में से एक है!

सारा दिन यहां के बच्चे और स्त्रियां अपने मकानों में, (जो अधिकतर अन्धेरे और सील भरे हैं, कुछ चमकदार भी हैं) और मर्द अपनी दुकानों में कुलबुलाते रहते हैं। शाम को सैर पर भी जाते हैं—खुली हवाओं में! फिर वापिस लौट यहीं आते हैं, जहां ज़िन्दगी आ कर रुक जाती है, जहां ज़िन्दगी के रास्ते आ कर रुक जाते हैं।

और वह स्वयं...स्वयं भी तो वह इस शमशान में जलती हुई चिता है, इस भयावने कब्रिस्तान में एक ज़िन्दा लाश है, नालियों में कुलबुलाता हुआ कीड़ा है, रेंगता हुआ......!

रज्जू ने एक दफ़ा फिर मां की ओर देखा। मां सो रही है। वह जाग रहा है। रात जाग रही है। यह अन्धेरे की भीगी चादर—गहरी काली, और निबिड़, !

मां का बेबसी में नहाया हुआ चेहरा फिर उसके सामने उजागर हो गया। मां आंगन में खड़ी थी—मैले चिथड़े पहने। रज्जू ने किताबें उठा ली थी। चाय अभी पीनी थी। कालेज जाना था। तभी मां ने कहा—"बेटा, कोई इंतज़ाम नहीं हुआ।"

मां भावशून्य हुई खड़ी थी। रज्जू ने खड़ी मां को देखा। देखते-देखते आँखों में कुछ अन्धेरा-सा छा गया—मां नज़र नहीं आयी, मां के स्थान पर केवल उसे एक प्रश्नचिह्न नज़र आया एक प्रश्नचिह्न—वृत्ताकार, सांप की कुंडली-सा!

उसकी इच्छा थी कि कुछ मां को कहे । पर क्या कहे ? उसकी समझ में नहीं आया। और वह बाहर की ओर चल दिया। "चाय तो पीते जाओ"—मां ने जैसे स्वप्न लोक से रज्जू को पुकारा।—

पर कौन सुनता !—रज्जू तो कदम नापता कालेज के रास्ते पर था ।

कालेज में आज तीन महीनों की फीस, साथ में परीक्षार्थी छात्र-छात्राओं से दाखला भी लिया जाना था। रज्जू को भी यह सब देना था। लेकिन मां कह रही थी कि कोई इन्तज़ाम नहीं हुआ।

रज्जू कालेज आ पहुंचा। किसी क्लास में वह नहीं गया। फूलों से घिरे एक लान में आ कर बैठ गया। यह जगह उसे बहुत प्यारी है।

रघुवीर यहाँ पर घण्टों लड़कियों के साथ, गप्पे हाँकता खड़ा रहता था। यह रघुवीर—युनियन का सक्रेटरी था न ? अच्छे कपड़े पहनता था न ! कोट पर हमेशा एक मुस्कराता हुआ फूल रखता था।

काफी देर रज्जू वहीं बैठा रहा। फिर एकांत-सूखी सड़कों पर भटकता रहा—कटे पंतग की तरह लुढ़कता रहा। फिर वह दरया किनारे आ गया। एक साफ, धुली, ठंडी चट्टान पर आकर बैठ गया—ऊपर चीलें उड़ रही थीं, पानी में मच्छलिया तैर रही थीं।

तब शाम हो गयी थी। बरिश पड़नी शुरु हो गयी। और वह भीगता-भीगता आंगन में आ खड़ा हुआ था। मां ने देखा। भागी-भागी बाहर आँगन में आयी। रज्जू से लिपट गयी—बारिश में भीगती रज्जू से लिपटी रही—"मेरे बेटे, कहां रहे ! कहां रहे !

बारिश में बिल्कुल भीग गये हो। कहां रहे ? निगोड़े तुम्हें भूख नहीं लगी क्या ? कहाँ रहा रे, अबतक तू ?"

तब सूखे कपड़े पहनने को दिये। एक पुराना-सा कम्बल ओढ़ने को दिया। और तब सुबह की बनी रोटी परस दी।

रज्जू को वह फूलों से घिरा लान बहुत पंसद है। लेकिन अब तो वह रोटी खा रहा था।

सोने से पहले मां की रज्जू से बहुत बातें करने की इच्छा थी। पर रज्जू गुमसुम हुआ बैठा पढ़ता रहा। पढ़ने की कोशिश करता रहा। सो गयी मां।

अब भी रात है। अचानक रज्जू को महसूस हुआ कि टीन का छज्जा खामोश है। हां, खामोश है। बारिश रुक गयी है।

रज्जू ने चाहा कि वह पढ़े। पर मां कह रही थी कोई इतज़ाम नहीं हुआ। शायद वह परीक्षा न दे सके। थोड़ा-सा उसका चेहरा विकृत हुआ, और उसने किताब बद कर दी।

पढ़ कर आखिर होगा भी क्या ? क्या होगा ?

क्या पढ़ कर वह मां की हाथों की चूड़ियाँ वापिस ला सकेगा ? गले का हार और कानों के बुँदे लौटा सकेगा ? क्या माँ को वह इतना आराम मुयस्सर करा सकेगा, कि माँ इस दुःख दर्द के लम्बे इतिहास को भूल जाये ?

जो उसके साथी उसके आगे थे, उनकी तस्वीरें उसके सामने उभर आयीं। और सबसे उभर कर रघुवीर की तस्वीर आयी। कालेज यूनियन का सक्रेटरी था। तितलियों को लिये फिरता। टक शाप में चक्कर लगाता था। कोट पर हंसता फूल होता था।

रघुवीर के बाप को अधरंग हो गया था। और एक साल की बेकारी ने उसे बदहवास कर दिया। आज उसे नौकरी मिल गयी है। लेकिन आज उसके कोट पर हंसता हुआ फूल नहीं रहा। कोट की कुहनियों पर पैवन्द लग गये हैं। घर से दूर है। घर को पैसे भेजने होते हैं। फाइलों पर झुके २ कमर दोहरी हो गयी है। आँखों में वह चमक नहीं रही। और शाम को आफिस से अंगीठी पर सबजी चढ़ा, इतना आटा वह गूंध लेना चाहता है कि सुबह की रोटियों का भी काम चल जाये।

रज्जू के सामने से यह सब तस्वीरें मिट गयीं। विद्रूप की रेखाएं उसके चेहरे पर उभर आयीं।

और एक असीम कसक से आलोकित हुआ कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। बाहर आँगन में आया। बारिश बिलकुल थम चुकी थी। आसमान पर तारे उग आये थे। पर अभी रात थी।

गुम-सुम सा वह आँगन में टहलता रहा, टहलता रहा।

आंगन के उस ओर की जगह नीची है, वहां पर पानी बहुत खड़ा है। इधर उधर भी कई गढे हैं, उन में भी पानी।

रज्जू टहलता रहा; गुम-सुम सा टहलता रहा। उसके मन में कुछ उभरा और फिर बैठ गया। और वह टहलता रहा, इस छोर से उस छोर तक।

कमरे में लौट आया। देखा—लैम्प में तेल खतम हो गया है। बत्ती नीचे धंस रही है।

उसने माँ की ओर देखा, और कहना चाहा—"माँ अब मैं तुम्हें इस चक्की में नहीं पिसने दूंगा। दो सेर आटे के लिए सारा

सारा दिन अब तुम्हें सेठ की बोरियों का अनाज नहीं छानना होगा।"

उसने सोचा कि वह कुछ भी करेगा, लेकिन माँ को इंतज़ाम करने की चिन्ता से विमुक्त कर देगा।

बुझता-सा लैम्प जल रहा था। बाहर तारे टिमटिमा रहे थे। यह तारों का समूह अन्धकार को दूर करने में समर्थ नहीं है।

वह चाहता है कि यह रात बीत जाए। यह कालिका धुल जाए। और एक स्वर्न विहान का उदय हो।

वह सुबह का इंतज़ार करने लगा। और उसने सोचा कि सुबह माँ के उठते ही माँ से कहेगा कि तुम्हें अब पटवारी की बहू के पास जाने की जरूरत नहीं।

उस समय टीन का छज्जा खामोश था।

हीरानन्द चक्रवर्ती

भगवान और मनुष्य

युग की आवाज़

हीरानन्द चक्रवर्ती

भगवान और मनुष्य

एक दिन स्वर्गपुरी में बैठे हुए भगवान विष्णु ने नारद से कहा—

'नारद! उस दिन तुमने मुझे एक फिल्मी गीत सुनवाने का वचन दिया था जिसमें मुझे मनुष्य बनने का 'चैलेंज' दिया गया है। आज मैं वह गाना सुनने के मूड में हूं।' क्या तुम उसका प्रबंध कर सकते हो?

नारद ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया —'हां! भगवान! मैं कल ही मृत्युलोक में इसी कारण से गया था और दिल्ली जाकर 'फिल्लम बहार' के उस गाने की रील उठा लाया हूं। आप मेरे साथ चलिए, मैं केवल आपको गाना ही नहीं सुनाऊंगा, बल्कि उस देवी के दर्शन भी कराऊंगा जिसने यह गाना गाया है। सिनेमा मशीन भी मैंने पहले से ही लाकर रक्खी हुई है।'

यह सुनकर भगवान विष्णु नारद के साथ चल पड़े और नारद ने उन्हें एक अन्धेरे कमरे में लेजाकर फ़िल्म दिखानी शुरू की। 'मालती' गा रही थी—

"भगवान दो घड़ी जरा इन्सान बन के देख।
धरती पै चार दिन कभी मेहमान बन के देख।"

भगवान विष्णु ने गाना सुनने के पश्चात नारद से कहा—
'नारद! मानव आखिर कौन सी ऐसी कठिन विपत्ति में फंस

गया है, कि वह मुझे मनुष्य बनने का बार बार 'चैलेंज' दे रहा है। आज से कुछ वर्ष पूर्व भी मैंने फिल्म 'चित्रलेखा' का ऐसा ही एक गाना सुना था—

"तुम जाओ जाओ भगवान बने, इन्सान बनो तो जानें !"

और आज मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है, कि मैं अवश्य ही मनुष्य रूप धारण कर संसार में जाऊंगा और देखूंगा कि ब्रह्मा जी द्वारा रचित मानव पर ऐसा कौन सा विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है ! मैंने इसे शालीनता, शिक्षाधिकार से युक्त बनाया है, दुनियां के उत्तमोत्तम पदार्थ इसके लिए उत्पन्न किए हैं और फिर भी यह चीखे चिल्लाए जाता है। नारद ! तुम अभी अभी मेरा 'वायुयान' तैयार करो, तथा स्वंय भी मेरे साथ चलने के लिए तैयार होकर आ जाओ।"

नारद ने डरते डरते कहा—"भगवन ! मृत्युलोक की वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टिगोचर करते हुए मैं आपको यही परामर्श दूंगा, कि आप वहां न जाएं। वहां आपको बड़ी मनोव्यथा होगी।"

"अरे ! मनोव्यथा कैसी ? मेरी ही बनाई सृष्टि क्या मेरी ही मनोव्यथा का कारण होगी? चलो, शीघ्रता से तैयार कर डालो, ताकि सूर्य अस्त होने से पूर्व ही वहां पहुँच जाएं।"

भगवान विष्णु की आज्ञानुसार नारद ने शीघ्र ही वायुयान तैयार किया और दोनों आकाश की उत्तुंगता से नीचे उतरने लगे। रास्ते में नारद ने भगवान ने पूछा-"भगवन ! वायुयान को कहाँ उतारा जाए ?"

"इसे काशी में उतार लेना। गंगास्नान कर लेंगे, यात्रा भी हो जाएगी और फिर वहां से आगे जाने का विचार बनाएंगे।"

यह सुनकर नारद ने वायुयान का रुख बनारस की ओर मोड़ा और दिन ढलते ही दोनों एक एकान्त स्थान पर उतर पड़े।

वायुयान को लौटाकर जब वह नगर में प्रविष्ट हुए तो नारद ने भगवान विष्णु से पूछा—

"भगवन ! आपके पास कुछ पैसे तो होंगे ?"

"पैसे ?"

"जी, हाँ ! मेरा तात्पर्य है—आजकल का सिक्का।"

"लेकिन इसकी क्या आवश्यकता है ?"

"आवश्यकता ! भगवन ! यहाँ तो पैसे के बिना बात भी नहीं होती।"

"ओहो ! ऐसी बात है, तो लो, इसका भी प्रबन्ध किए देते हैं।"

भगवान विष्णु ने अपनी मुट्ठी से सौ सौ के तीन नोट निकाले, जिसमें से एक उन्होंने नारद को दिया और दो अपनी धोती के आंचल में बांध कर कहने लगे—

"पहले कहीं रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध करें, भूख ने बहुत सताया है, वह देखो, सामने किसी महापुरुष का घर है, उधर चलते है। वहां भोजन भी मिल जाएगा तथा रात्रि को भी वहाँ ही ठहर जाएंगे।"

नारद ने किंचित स्मिति से कहा—'भगवान ! आप कौन से युग की बातें कर रहे हैं, अतिथि सत्कार की बात दिल से निकाल दीजिए। होटलों की बात कीजिए, होटलों की ! वह देखिए सामने जगमग करती हुई बिल्डिंग सीसल होटल की है, जहां फर्नीचर से

सजे हुए हवादार रहने के लिये कमरे हैं और बढ़िया सर्विस है, नाना प्रकार के षटरस व्यञ्जन मिलते हैं, सत्तर प्रकार के मीट तैयार किये जाते हैं। और वह देखिए मैजस्टिक होटल है, जिसमें रिहाइश और खाद्य वस्तुओं के अतिरिक्त 'बाल रूम' का भी प्रबन्ध है, जहां प्रतिदिन सन्ध्या-समय इङ्गलिश आरकैस्ट्रा के साथ डांस भी होता है, और वह सड़क के किनारे पैराडाईज़ होटल है, जहां बार भी है, और······।खैर ! क्या लाभ ?...... इन सब में जाने के लिए तो पैसे की आवश्यकता है, और इस आवश्यकता के लिए यह तीन सौ रुपये बहुत कम हैं।'

'यह कैसी अनर्गल बातें कर रहे हो नारद ! काशी जैसे धर्म-स्थान में हमें रहने के हेतु जगह भी नहीं मिलेगी ! चलो, किसी मन्दिर में चलते हैं, यहां सैंकड़ों मेरे मन्दिर हैं और मैं तो सदैव पीड़ितों का सहायक रहा हूं।'

'भगवान ! मन्दिर अब आपके नहीं रहे। यह तो पुजारियों के हैं, अस्तु ! चलिए ! कदाचित कुछ प्रबन्ध हो जाए।'

नारद ने पास की एक दुकान से सौ रुपये का नोट भुनवाया, और एक रिक्शा वाले को आवाज़ देकर भगवान के पास पहुंचे तथा कहने लगे—'चलिए भगवान ! रिक्शा पर बैठकर चलते हैं।'

'रिक्शा ? कैसी रिक्शा ?'

'वह सामने खड़ी है, महाराज !'

'मगर इसके आगे घोड़ा, बैल कुछ भी नहीं जुता।'

'मनुष्य जो जुता है।'

'तुम तो कहते थे दुनियां ने बड़ी उन्नति की है, अब यहां

मोटरें, कारें, गाड़ियाँ, समुद्री जहाज, हवाई जहाज़ चलते हैं इन सब के होते हुए, भी गाड़ियों को मनुष्य खींच रहे हैं ?

'भगवान ! मनुष्य ने विज्ञान और दर्शन में जितनी उन्नति की है, मनुष्यत्व के नाते उतना ही चौपट हो गया है।'

'कुछ भी हो नारद ! मैं मनुष्य पर सवार होकर नहीं जाऊंगा ! चलो, पैदल चलें।'

दोनों को पैदल चलता देखकर रिक्शा वाला लपक कर उनके समीप पहुंचा—

'बाबू जी ! रिक्शा।'

'नहीं, बाबा ! हम पैदल जाएंगे।'

'बाबू जी ! दो आने कम दे दीजिए, आज सारा दिन कुछ नहीं बना, मेरे बच्चे भूखे मर जाएंगे।'

'भूखे मर जाएंगे ?······भूखे क्यों मर जाएंगे ?'

भगवान विष्णु ने आश्चर्यान्वित होकर नारद की ओर देखा।

'क्योंकि इसके पास पैसे नहीं हैं, महाराज ! और जिसके पास पैसे नहीं होते, उसके बच्चे भूखे मर जाते हैं।'

'नहीं नहीं ! किसी के बच्चे के जीने तक का अधिकार कैसे छीना जा सकता है ? ऐसा तो कोई विधान नहीं है धार्मिक पुस्तकों में ! पैसे तो इस के पास होने चाहिए।'

'मगर महाराज ! वह तो बैंकों में होते हैं।'

'तो यह भी वहाँ से ले आए न ? जिससे यह अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण कर सके।'

'महाराज ! यह बैंकों से रुपया नहीं ला सकता, क्योंकि यह अपनी शारीरिक शक्ति से रिक्शा चलाता है। बैंकों से रुपया वह ला सकते हैं, जो अपनी पूंजी से फैक्टरियां चलाते हैं, मिलें और कारखाने चलाते हैं, हकूमत चलाते हैं। भगवन, यह मनुष्य की सभ्यता तथा क्रमिक विकास के लिए मनुष्य की अपनी बनाई हुई गहरी थ्यूरियां हैं। आप इन्हें नहीं समझ सकते। आप ने तो मनुष्य की उत्पत्ति की थी और मनुष्यता की नींव को पक्की करने के लिये पाप, पुण्य और दण्ड के विधान ही बनाये थे, मगर आज मानव ने इस ऐन्द्रजालिक पाश को तोड़ डाला है। आपने ब्रह्मारचित मनुष्य को महत्वयुक्त और शिक्षाधिकारी बनाया था, मगर मानव ने ही इसकी वर्गीय-बांट पैदा करके सब मनुष्यों को शालीनता तथा शिक्षाधिकारी नहीं रहने दिया। उसने दुनियां की परमार्थी जनसंख्या को इन भोग्य-पदार्थों से वञ्चित कर दिया है, जो आपने इनको दिखाई थीं। यह सब मानव के मस्तिष्क से निकले हुए इक्नामिक्स और पालिटिक्स जैसे गूढ़ फलसफों की प्रतिक्रिया है, कि दुनियां में फाशीज़्म, तानाशाही और इम्पीरिलिज्म जैसी राजनीतियां स्थापित हैं। तथा निरीह दीनता डौलर के दृढ़ भुजापाशों में जकड़ी हुई है, जिसके प्रभावान्वित रिक्शा वाला घोड़े की तरह रिक्शा के आगे जुतकर रिक्शा चलाता है, फिर भी इसके बच्चे भूखे मर जाते है। अधिकारी राजकार्य चलाता है, तथा उसके वंशज आनन्द से मज़े उड़ाते हैं। यूं समझिए कि दीनता बिचारी पड़ी सो रही है और अपने भूख से मरते बच्चों का इलाज भी नहीं सोच सकती।'

भगवान विष्णु शायद नारद के इस भावपूर्ण भाषण का पूरा अर्थ न समझ सके, तथा चुपचाप उसके साथ फ़ुटपाथ पर चलने

लगे। थोड़ी दूर चलने के बाद उन्हें एक मन्दिर दिखाई दिया। वह शिष्टता से मन्दिर में प्रविष्ट हुए। एक अर्द्ध व्यसक पुजारी द्वार की ओर पीठ किए मूर्ति के सन्मुख बैठा चढ़ावे के पैसे गिन रहा था। उसके पास ही एक और नवयुवक पुजारी मिष्टान और मेवे एकत्रित करने में संलग्न था। वह बाहिर द्वार के साथ लगकर खड़े हो गए, ताकि पुजारी जी निपट कर बाहिर निकलें, तो वह अपनी बात कहें।

थोड़ी देर बाद नवयुवक पुजारी ने मिष्ठान और मेवे की गठरी एक ओर रखते हुए कहा—'महाराज! आज तो चढ़ावा सत्तर से कुछ ऊपर मालूम पड़ता है, आज तो······।'

'अच्छा, बाबा! तुम चार पैसे जमा नहीं होने दोगे!' बड़े पुजारी ने अति भुंभलाहट से उत्तर दिया। नवयुवक पुजारी ने आगे बढ़कर अतिशय विनम्रता से उसके चरण दबाने शुरू किए। वे मुस्करा पड़े। जब वे सब सामान एकत्र करके बाहिर निकले, तो नारद ने आगे बढ़कर प्रणाम किया तथा अनुनय भरे स्वर में कहने लगे, 'महाराज! हम परदेशी हैं, रात्रि यहां व्यतीत करना चाहते हैं। क्या मन्दिर में रहने के लिए थोड़ी-सी जगह मिल जाएगी?'

'अरे! तुम हो कौन? चोर कहीं के! बिना पूछे मन्दिर में घुस आये हो! बाबा का घर समझ लिया है क्या? भाग जाओ यहां से, सारा मन्दिर भ्रष्ट कर डाला है।'

'बाबा! हम क्षत्रिय है, केवल रात ही व्यतीत करनी है यहाँ!'

'रात व्यतीत करनी हैं तो धर्मशाला में जाओ, यहां कोई स्थान नहीं।'

'महाराज ! वह सामने कमरा खाली पड़ा है, हमारे लिए वही पर्याप्त है।'

'अहो ! यह मुँह और मसूर की दाल ! दो रुपये रात का किराया होगा इस कमरे का, दे सकोगे ?'

नारद ने किंचित रुष्टता से दो रुपये उसकी हथेली पर पटक दिए और भगवान विष्णु को इस कमरे में बिठाकर बाज़ार से कुछ खाने पीने की सामग्री ले आया और दोनों खा पीकर तृप्त होकर वहीं लेट रहे। अर्द्धरात्रि के करीब बाहिर कुछ खटका सा हुआ और भगवान विष्णु की नींद उचाट हो गई। उन्होंने नारद को जगाया। दोनों धीरे से बाहिर निकले ताकि परिस्थिति से पूर्ण-रूपेण भिज्ञ हो सकें—सामने एक कमरे से प्रकाश छन छन कर आ रहा था। वे निकट जाकर द्वार की दरारों से भीतर देखने लगे।

भगवान विष्णु ने धीरे से कहा—'नारद, समाने मेज़ पर मदिरा नहीं रक्खी है क्या, जिसे यह नवयुवक पुजारी गिलास में उँडेल उँडेल कर आनन्द से पी रहा है ?'

'मदिरा! कहां भगवन ! यह तो असली फ्रांसीसी शराब है, 'ऐक्स नं० थ्री' नारद ने बाहिर से ही बोतल का लेबल पढ़ते हुए कहा।

'ओहो ! तभी यह पुजारी चढ़ावे के ७०) रुपये का जिक्र कर रहा था। उफ ! कैसा अंधेर है ? देवी का मन्दिर—यह चढ़ावा और इसका यह दुरुपयोग ! नारद ! चलो, कमरे में चलें, यह सब मुझ से नहीं देखा जाता।' और वह दोनों पुन : अपने कमरे में आकर स्वप्नमग्न हो गए।

प्रात: जब वह उठे, तो सूर्य देव अभी उदय नहीं हुए थे। भगवान विष्णु ने आश्चर्य और कौतूहल से अपनी कमर टटोलते हुए कहा—

'नारद !'

'क्या है, महाराज ?'

'मेरी धोती के पल्लू से सौ सौ रु० के दो नोट बन्धे थे, वह अब नहीं मिल रहे।'

'भगवान ! जाएंगे कहां ? यहीं कहीं होंगे।'

'अरे, बाबा ! होंगे कहाँ ? यहां तो धोती का वह टुकड़ा भी कटा हुआ है, जिसके साथ उन्हें बांध रक्खा था।'

'और भगवान ! हमारी जूतियां ?'

'अच्छा ! तो वे भी नहीं हैं। ......अस्तु ! कोई बात नहीं, तुम इस की चर्चा किसी से न करना, हम आज का दिन भी यहीं ठहरते हैं और इस बात का अवश्य पता लगाएंगे।'

'अच्छा, भगवान ! तथास्तु।'

'दिन चढ़ता जा रहा है, मेरा ख्याल है ; पहले गंगास्नान कर आएं, फिर कुछ परामर्श करेंगे।'

दोनों शीघ्रता से उठे और विवश, नंगे पांव ही गंगा घाट की ओर रवाना हुए।

जब घाट पर पहुंचे तो दिन चढ़ चुका था, घाट पर खूब चहल-पहल थी। दोनों ने अभी वस्त्र ही उतारने आरम्भ किए थे, कि एक पण्डे ने उन्हें पीछे से आ लिया।

'अप्पा ! कौन जात है ? कहाँ के वासी ? नाम ? पिता का नाम ?'

भगवान विष्णु पण्डे के इस निरर्थक प्रश्न से अकुला उठे,

और सतम्भित होकर नारद की ओर देखने लगे।

नारद ने समयोचित स्थिति का अनुभव करते हुए विनम्रता से कहा—'महाराज! हम क्षत्रिय हैं, दिल्ली में रहते हैं, भाई भाई हैं, हमारे स्वर्गवासी पिता का नाम श्री 'भगवान दास' था।'

यह सुनते ही पण्डा एक मोटी सी बही खोलकर उस पर झुक गया। कुछ देर बाद उसके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की आभा दिखाई दी और वह अपनी जगह से थोड़ा उछलकर बोला—

'निकल आया......निकल आया......श्रीमान! आप मेरे ही जजमान हैं, यह देखिए, भगवान दास; पुत्र लाला राम दास; पुत्र लाला विष्णु दास; पुत्र लाला शिवदास; पुत्र लाला यमुनादास—जाति भाटिया, कौम क्षत्रिय—दिल्ली से अपनी माता सत्ययुगी का पिण्ड संवत् १८६२ वि. में भराने आए थे। ठीक है, न?'

'ठीक है, महाराज!'

'तो आइए! अपने पित्तरों के कल्याण के लिए संकल्प करा लीजिए।'

नारद ने प्रश्न सूचक दृष्टि से भगवान विष्णु की ओर देखा। भगवान विष्णु ने मुस्कराते हुए कहा—'हां, नारद! ब्राह्मण देवता ठीक ही तो कहते हैं-जब हम यात्रा के लिए आए हैं तो यह कार्य भी आवश्यक है।'

नारद ने भगवान के कानों में कहा—'महाराज! संकल्प कराने के लिए तो पैसों की आवश्यकता है। आपके दो सौ रुपये तो गुम हो गए हैं और मेरे पास केवल पचास रुपये शेष रह गए हैं; और मेरे विचार में यह रकम थोड़ी होगी।'

पण्डा जो शायद नारद की असमंजसता का कारण भांप गया था, मुस्कराकर बोला—'महाराज ! कोई अधिक खर्च नहीं आएगा, यदि आप निर्धन हैं, तो आपका कार्य एक सौ रुपये में हो जाएगा।'

'महाराज ! हमारे पास इतने पैसे भी नहीं है।'

'तो फिर इकहत्तर रुपये वाला ही करा लीजिए।'

'यह भी अधिक हैं, महाराज !'

'अच्छा ! आपके पास इकावन (५१) रुपये तो होंगे ही, तीस रुपये दक्षिणा और इक्कीस रुपये गोदान !'

'लेकिन इतने भी तो........।'

'अस्तु ! आपकी इच्छा ! आपको अपने पित्तरों से प्रेम ही नहीं तो मैं क्या कर सकता हूं। अच्छा ! आप ऐसा कीजिए, तीस रुपये दक्षिणा के दे दीजिए। गोदान न सही; आप अपने पिता के सुपुत्र होते हुए उसके कल्याण के लिए इतना भी नहीं कर सकते ?'

भगवान विष्णु नारद से कहने लगे'—अरे यह पण्डा तो इस तरह सौदेबाजी कर रहा है, मानों इसने लोगों के पित्तरों को दान का धन पहुँचाने के लिए कोई एजेन्सी खोल रक्खी है।'

नारद ने उत्तर दिया—'भगवान आप विस्मित क्यों होते है ? पून्जी के खिंचाव के कारण आजकल धर्म केवल बाजारी वस्तु बन कर रह गया है। इसकी सौदेबाजी केवल पंडितों के ही यहां नहीं होती। मंदिरों के पुजारी, मस्जिदों के मौलवी, गुरुद्वारों के महन्त, सब ही इसका व्यापार करते हैं। इसे यथा समय पून्जी-पतियों या जागीरदारों के हाथ बेच दिया जाता है और समयोचित इसमें पाखण्ड का स्प्रिट रूपी शर्बत या विष घोल कर इसे जन-साधारण में बांटा जाता है, जो

आनन्द से पीते हैं। फिर या तो व अहर्द्ध चेतन-से हो जाते हैं या पागल हो जाते हैं ! इस के अनन्तर झंझट, कत्ल व अत्याचार और खून खराबा होता है—बस, यही है धर्म्म की महिमा, तथा बड़प्पन आज-कल !'

भगवान विष्णु इस घटना और नारद की गूढ़-तत्व भरी बातों को सुनकर असहिष्णु से होकर कहने लगे 'नारद ! चलो। मन्दिर वापिस चलें, मेरी तबीअत अत्याधिक बेचैन है।'

जब वह घुम फिर कर मन्दिर वापिस पहुँचे तो रात हो चुकी थी। वह भोजन करके शीघ्र ही सो गए।

अभी इन्हें सोए थोडी देर ही हुई थी, कि खटाक से उनके कमरे का द्वार खुला और दोनों हड़बड़ाकर उठ बैठे। मन्दिर का नवयुवक पुजारी अपने साथ एक नवयुवती सुकुमारी को लिए हांफता हुआ कमरे में घुस आया और हकलाकर कहने लगा—'महाराज ! यह मेरी धर्मपत्नी है। हमारे मन्दिर में पुलीस घुस आई है। आप इसे थोड़ी देर यहां बैठने दीजिए, मैं अभी आकर इसे ले जाऊंगा।'

यह कहकर वह सुकमारी को उनके पास छोड़ उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कमरे से बाहिर निकल गया। वह अभी संभलने भी न पाये थे कि इतने में एक सबइन्सपैक्टर कुछ एक सिपाहियों सहित उनके कमरे में प्रविष्ट हुआ और देखते ही देखते लड़की समेत उन्हें पकड़ कर आंगन में ले आया। सिपाहियों ने उन्हें एक ओर बिठा दिया और इन्सपैक्टर साहिब लड़की को लेकर बरामदे में पहूंचे और एक कुर्सी पर बैठ गए। वहाँ दोनों पुजारी पहले ही हाथ बांधे उपस्थित थे। थानेदार ने कुर्सी पर बैठते ही नवयुवक पुजारी से गर्ज कर कहा—

'छोकरे ! मैं खूब जानता हूं कि लड़की को सेठ धर्मदास के मकान से भगाकर तू ही लाया है ! निकाल, जो जेवर इसके पास थे; जानता है मुझे !'

बड़े पुजारी ने डरते डरते कहा—'श्रीमान ! मुद्दत से इनका आपस में सम्बन्ध है। मैंने इस लड़के को बहुतेरा समझाया कि वह इस हरकत से बाज आ जाए, मगर यह माना ही नहीं। लड़की आज स्वयम् ही भागकर इसके पास आई थी और रात को दोनों का यहां से भागने का विचार था। जिसका पता मुझे अभी अभी चला है। ये हैं आभूषण जो लड़की अपने साथ लाई थी। आप इस बार इसे क्षमा कर दीजिए। यह मन्दिर की मर्यादा का प्रश्न है। फिर ऐसी बात कभी न होगी।'

'वाह, जी वाह ! क्षमा कर दूं......क्षमा तो इसे अब न्यायालय में ही जाकर मिलेगी।'

'महाराज ! इस प्रकार मन्दिर की साख मिट्टी में मिल जाएगी। धर्म की लाज चली जाएगी ! आप इस बार क्षमा कर दीजिए, मैं इसे समझा दूंगा।' यह कहकर पूजारी ने नोटों का एक बण्डल थानेदार की ओर सरका दिया। थानेदार का स्वर कुछ नर्म हो गया-और उसने सिर खुजाते हुए कहा—'पर यह मामला दबाया कैसे जाएगा ?'

बड़े पुजारी ने आंगन में बैठे हुए भगवान विष्णु और नारद की ओर संकेत करके कुछ कहा।

'हां ! ठीक है ! पर यह लड़की उनके विरुद्ध बयान दे देगी ? थानेदार ने पूछा।'

नवयुवक पुजारी ने लड़की को आंख मार कर कहा—'श्यामा! यह दोनों बदमाश तुझे बहका कर लाए हैं न ?'

'जी हां, महाराज!' लड़की ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

नारद और भगवान विष्णु आश्चर्य से एक दुसरे की ओर देखने लगे। थानेदार ने स्वयम् ही लड़की के बयान लिखकर उसे याद करवाए और फिर उन दोनों को अपने पास बुला कर कहा—'क्यों शैतानों! इस लड़की को भगाकर अपने कमरे में क्यों लाए थे ?'

नारद ने तनकर कहा—'श्रीमान......।'

'श्रीमान के बच्चे! खड़े होने की अक्ल नहीं! ईश्वर सिंह! इन दोनों को अन्दर कर दो। तभी यह सीधे होंगे।'

ईश्वर सिंह ने उन्हें थाने के हवालात में बन्द कर दिया। दोनों इस अचानक विपत्ति से घबरा उठे। भगवान विष्णु ने चिंतित स्वर से कहा—

'नारद! अब क्या होगा ?'

'होगा क्या ? मुक्कदमा चलेगा और सात वर्ष कैद होगी।'

'सात वर्ष ?'

'जी, हाँ!'

'मगर इस विपत्ति से छुटकारा नहीं मिल सकता ?'

'मिल सकता है।'

'कैसे ?'

'पुजारी की घूंस से बढ़कर घूंस!'

'अच्छा, बाबा ! जिस तरह भी हो यहां से निकलने का प्रबन्ध करो ।'

अकस्मात बाहिर से किसी स्त्री का आर्त्त स्वर सुनाई दिया—दोनों ने सिर उठाकर उधर देखा । आंगन में लगे हुए लैम्प की मध्यम सी रौशनी में पहरे का सिपाही एक सुकुमारी को एक कमरे की ओर खींचे लिए जा रहा था । भगवान विष्णु ने नारद से कहा—'क्या यह वही लड़की नहीं है जो हम ने मन्दिर में देखी थी ?'

'हां, महाराज ! है तो वही !'

वे दोनों फटी आंखों से इस रोमांचकारी दृश्य को देखने लगे । सिपाही जब लड़की की अनुनय विनय से तंग आ गया तो उसने डपट कर कहा—

'वे मुशटण्डे मुझ से अच्छे थे क्या, जो उनके साथ भाग रही थी ? मैं क्या उनसे कम सुन्दर हूँ या कम जवान हूँ ?'

नारद ने इस घृणात्मक दृश्य से तड़पकर कहा—'भगवन ! यह कैसा अनर्थ है ? आप मुझे अनुमति प्रदान कीजिए कि मैं जेलखाने का द्वार तोड़ दूं...?'

लेकिन इतने में थानेदार साहिब थाने में पहुँच गए और सिपाही को डांटकर कहा—'यह क्या हो रहा है ?'

'श्रीमान ! यह लड़की भागने की चेष्टा कर रही थी ?'

'अच्छा ! तो इसे मेरे कमरे में भेज दो !'

सिपाही लड़की को बांह से पकड़कर थानेदार के साथ चलने लगा और तीनों उन की दृष्टि से ओझल हो गए । थोड़ी देर बाद लड़की

की हृदय विदारक चीखें फिर कमरे की चार–दीवारी में गूंज उठीं, पर शीघ्र ही दब-सी गईं, जैसे किसी द्वारा दबा दी गई हों। भगवान विष्णु और नारद सारी रात इस दुर्घटना से बेचैन रहे।

प्रातःकाल भगवान विष्णु ने अपनी मुट्ठी से नोट निकालने शुरु किए एवम् थोड़ी देर में नोटों का ढेर लगा दिया। नारद ने सारे नोट एकत्र करके संकेत से सिपाही को बुलाया और उसे बीस रुपये देकर कहा, कि वह थानेदार को बुलावे। थानेदार आया और नोटों के दो बण्डलों से हवालात का द्वार खुल गया।

भगवान विष्णु ने बाहर आकर आराम की सांस ली और नारद से कहने लगे-'भई! पुरुष रुप में तो इन्सान बनकर रहना बहुत कठिन है। शुक्र है, कि हमारे पास रूपये थे तो बच गए, वरना खैर नहीं थी। आगे हम स्त्री का रुप धार कर चलते हैं, ताकि स्त्री जाति की जीवन-चर्या का भी पूर्ण रूपेण पता लग सकें। तथा इस दशा में ऐसी उल्टी सीधी विपत्तिएं भी न पड़ेंगी।'

'जैसे आपकी इच्छा! भगवन!'

दोनों ने एकान्त स्थान में जाकर लड़कियों का रुप बनाया और एक दूसरे को देखकर मुस्कराए।

भगवान विष्णु ने कहा—'भई! हमें यहां से सीधे मद्रास चलना चाहिए, जहाँ उस गाने की उत्पत्ति हुई है; ताकि मानवता के 'लेंज' के ठीक कारण का पता लग सकें।' दोनों स्टेशन से गाड़ी पर सवार हो मद्रास की ओर रवाना हुए......।

सूर्य्य अस्त हो चुका था। दोनों एक तांगे वाले के पास जाकर कहने लगे—

'भाई साहिब ! हमने ए० वी० एम० स्टूडियो जाना है, क्या लोगे ?'

'आओ ! बैठो ! जो इच्छा हो दे देना ।'

दोनों मौन धारण किए तांगे पर बैठ गए । रास्ते में तांगे वाले ने अकस्मात प्रश्न किया—'क्या आप ऐक्सैट्रा में काम करने के लिये यहां पधारी हैं ?'

नारद इस बेवक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार न था, घबराकर बोला—'जी हां !'

'तो फिर स्टूडियो में जाने से क्या लाभ ? मैं आपको एक्सैट्रा-स्पलाईंग एजेन्सी के दफ्तर में ले चलता हूँ, वहां तुरन्त ही आपका काम बन जाएगा ।'

'नहीं, भाई साहिब ! हम फिल्म 'बहार के डायरैक्टर और लेखक से भी मिलना चाहती हैं ।'

'मगर इस समय स्टूडियो बन्द होगा । इस लिए बेहतर है कि आप डायरैक्टर साहिब के घर ही चलें ।'

'अच्छा ! तो फिर उधर ही चलो ।'

तांगे वाले ने तांगा एक नई सड़क पर मोड़ा और थोड़ी देर के बाद एक मकान के आगे ला कर खड़ा कर दिया । उसने आगे बढ़ कर द्वार खटखटाया । बढ़िया सा सूट पहिने एक नवयुवक बाहर निकला । थोड़ी देर दोनों के मध्य कुछ बातचीत होती रही और फिर इस नवयुवक ने आगे बढ़ कर कहा—

'आइए, अन्दर पधारिये ।'

दोनों तांगे से उतर कर मकान में प्रविष्ट हुए। बहुत अच्छी तरह से सजा हुआ एक कमरा उनके लिए दे दिया गया। उस नवयुवक ने उनके पास आकर अति निम्रता से कहा—

'श्रीमती जी! डायरैक्टर साहिब बम्बई गए हुए हैं। एक दो दिन में आजाएंगे! आप निश्चत होकर यहां रहिए...आपको कोई कष्ट नहीं होगा।'

नारद और भगवान विष्णु इस अतिथि-सत्कार और शिष्ट सम्भाषण से बहुत प्रभावित हुए। थोड़ी देर के बाद उनके कमरे में बढ़िया प्रकार का सुस्वादिष्ट भोजन भेज दिया गया।

प्रातःकाल जब वह उठकर स्नानादि से निवृत हुए, तो वही नवयुवक एक और परदेशी मनुष्य को साथ लिए भीतर प्रविष्ट हुआ। और कहने लगा।

'श्रीमती! यह हमारे डायरैक्टर सहिब के पर्सनल असिस्टैन्ट हैं। आज प्रातः बम्बई से डायरैक्टर सहिब का सन्देश लेकर आए हैं, कि अभी वह दस बारह दिन वहीं रहेंगे। यदि आप उनसे शीघ्र मिलना चाहती हैं तो इनके साथ बम्बई चली जाएं। आज शाम की गाड़ी यह वापस जा रहे हैं। आपको फ़िल्म-बहार की कहानी के लेखक भी वहीं मिल जाएंगे और यदि कुछ काम करने का निश्चय है तो इसकी भी मद्रास की अपेक्षा बम्बई में अधिक है। आगे जैसी आप की इच्छा।'

नारद जो पहले ही इसके अतिथि-सत्कार तथा शिष्ट-सम्भाषण से प्रभावित हो चुके थे, कहने लगे—'आप जैसा उचित समझें वैसा ही प्रबन्ध कर दीजिए। हमें तो अभी केवल डायरैक्टर साहिब से मिलना है।'

उस नवयुवक ने अपने नौकर को पुकार कर कहा कि वह मद्रास ऐक्सप्रेस में फर्स्ट-क्लास की तीन सीटें रीज़र्व करा आये।

शाम को मद्रास ऐक्सप्रेस पर सवार होकर वे बम्बई पहुँचे...। वहां भी उन्हें इसी प्रकार एक बढ़िया किस्म के मकान में ठहराया गया एवम् दोनों के लिए अलग अलग कमरे नियत कर दिए गये। उस परदेशी मनुष्य ने उन्हें बताया कि डायरैक्टर साहिब रात को पधारेंगे।

रात के दस बजे के करीब भगवान विष्णु को बाहिर किसी के पांवों की आहट सुनाई दी और उसके साथ ही उन्हें किसी के बोलने की आवाज़ आई। उन्होंने द्वार पर कान लगा कर सुना। कोई कह रहा था—

'देखिए साहिब ! नया नया माल है तनिक ध्यान से काम लीजिएगा। छः हजार रुपये में मद्रास से दो अप्सराएं लाया हूँ, देखिएगा तो तबिअत खुश हो जाएगी। और हां अपने आप को फ़िल्म बहार का डायररैक्टर प्रकट कीजिएगा और उन्हें किसी नई फ़िल्म की 'हीरोईन' बनाने का लालच दीजिए। बस तुरन्त काम बन जाएगा।'

अचानक कमरे का द्वार खुला और मदिरापान किये एक पुरुष लड़खड़ाता हुआ कमरे में प्रविष्ट हुआ। भगवान विष्णु सहम कर एक ओर खड़े हो गए।

'ओहो ! घबराइए नहीं ! इस सोफे पर बैठ जाइए। मैं फ़िल्म 'बहार' का डायरैक्टर हूँ, आप मुझसे मिलना चाहती थीं न ?'

यह कह कर उस आदमी ने भगवान विष्णु को कन्धों से पकड़कर सोफे पर बिठा दिया और स्वयम् उनके साथ सट कर बैठ गया।

भगवान विष्णु ने एक ओर सरकते हुए कहा 'यह आपके मुख से दुर्गन्धि कैसी आ रही है?'

'नहीं! गन्ध ऐसी अधिक तो नहीं! बैरे ने आज कुछ ऐसा-बोग्स-काक-टेल-बनाया है कि मुख से दुर्गन्धि ही नहीं जाती।'

यह कहते कहते उसने अपनी भुजाएं भगवान की कमर के गिर्द-फैलाईं। भगवान विष्णु बोखलाकर उठ खड़े हुए। वह मदमस्ती से झूम कर बोला—'लज्जाती क्यों हो! यदि हीरोइन बनना है, तो इस लज्जा और शर्म को तिलांजली देनी पड़ेगी। आओ मेरे पास बैठो! ऐसी सुन्दर रातें क्या रोज रोज आती हैं?'

भगवान इसके माथे पर शिकुन देखकर द्वार की ओर लपके परन्तु उसने उठकर फिर उन्हें दबोच लिया। अब भगवान विष्णु को अपने बल-प्रयोग के अतिरिक्त कोई उपाय न सूझा। उन्होंने उसे अपने हाथों पर उठाकर परे फेंक दिया और कमरे से बाहिर आने के लिए द्वार की ओर बढ़े, पर द्वार बाहिर से बंद था। उन्होंने लात मार कर उसे तोड़ दिया तथा कमरे से बाहिर आए।

बाहिर आकर उन्होंने देखा कि साथ वाले कमरे का द्वार भी टूटा पड़ा है और नारद महाराज बाहिर खड़े हांफ रहे हैं। भगवान विष्णु को देखकर नारद ने अपनी आकुलता छिपाने की चेष्टा करते हुए कहा—'महाराज! आप घबराए हुए हैं, क्या बात है?'

भगवान विष्णु ने धीरे से कहा—'यह समय बातों का नहीं,

यहाँ से निकल भागने की तय्यारी करो। इसी में हमारा भला है।
आओ ! आओ ! शीघ्रता से मेरा हाथ पकड़ लो।'

नारद ने लपककर भगवान विष्णु का हाथ पकड़ लिया। दोनों आकाश की ओर उड़ने लगे। नीचे सहसा किसी होटल में यह रिकार्ड बज उठा—

'भगवान दो घड़ी ज़रा इन्सान बन के देख।
धरती पै चार दिन कभी मेहमान बनके देख॥'

संत सिंह सेखों

एटम-बम के विरुद्ध

युग की आवाज़

संत सिंह सेखों

एटम-बम के विरुद्ध

"आप बड़े दानी पुरुष हैं, लाला जी !" तीखी नोकदार पगड़ी वाले अधेड़-आयु के एक पढ़े-लिखे व्यक्ति ने भाटों के से भाव से कहा। उसका संकेत दुकान में कपड़ों से लदे मेज़ पर बैठे सत्तर-वर्ष के बूढ़े मालिक की ओर था। उस अधेड़-व्यक्ति की साथिन एक छोटे से क़द की गठीली सी लड़की थी। आयु के तो वह पच्चीस वर्ष से ऊपर थी, किन्तु कद छोटा तथा गठीला होने से उसे लड़की कहने में कोई गलती नहीं। एक विजयोल्लास से और दूसरा विजय की आशा से मुस्करा रहा था। उसकी धारणा यह थी कि उसने दो-चार दिनों से उकसा २ कर इस अधेड़ आयु के शिक्षित मध्यवर्ग के व्यक्ति को अमीर लाला जी के पास आने पर विवश कर लिया था; और इस अमीर लाला से आशा उसे और नहीं तो यह थी कि शांति-सम्मेलन की शांतिध्वजएं बनाने के लिए कुछ कपड़ा मिल जाएगा। बीस गज़ ! वह निश्चय से नहीं कह सकती थी कि वह यहां आकर रुक जाएगी। अभी कल ही तो उन्हें एक काग़ज़ के व्यापारी से पांच रिम काग़ज़ शांति-सम्मेलन के विज्ञापनों आदि के लिये क्या नहीं मिल गए थे; पांच रिम साठ रुपयों के थे। यदि एक व्यापारी शांति के लिये साठ रुपए चंदा दे सकता है, तो दूसरा बीस गज़ कपड़ा न दे देगा? आखिर शांति की अवश्यकता तो सब से अधिक इन अमीरों, व्यापारियों, जागीरदारों को है !

मेज़ पर पड़े कपड़ों के थान अभी कुछ गाहक देखते गए थे। किन्तु लाला जी की आकृति से यों प्रतीत होता था कि वे गाहक केवल कपड़े देख कर ही चले गये थे; कुछ ख़रीद कर नहीं ले गये थे।

"कालिये सरदार जी !" लाला जी ने एक विशेष आकार के भय से कहा। अमीर व्यापारी लोग केवल इन्कम टैक्स या केवल सिविल-सपलाई के कर्मचारियों से ही नहीं डरते थे, वे अच्छे सफ़ेदपोश चंदा मांगने वालों से भी भय रखते थे।

"आज हम आप से एक ऐसे भले काम में दान की सहायता लेने आये हैं, जिसके लिये किसी को भी अपत्ति नहीं हो सकती !" उस ंदा माँगनें वालें ने कहा—

लाला जी को स्मरण हुआ कि अभी सवेरे ही उसके एक कर्मचारी ने उससे इस चंदा मांगने वाले की चर्चा की थी, इस लिये उसने बात को स्पष्ट कराने की कोई आवश्यकता न समझी और झटपट अपनी रक्षा के दाँव पर आ गया—

"सरदार जी। आजकल किस में दान की समर्थ्य शेष रह गई है ! आप समझते हैं हम लाखों में खेलते हैं, किन्तु वे लाख तो रेत की भांति कर रहे हैं। और फिर इस नगर में तो व्यापार की बात ही नहीं रह गई, दिन भर बाज़ार की ओर आने-जाने वालों को देखते रहते हैं किन्तु शाम को हाथ पांव सिकोड़ कर उठ पड़ते हैं। कर्मचारियों को वेतन तक पल्ले से देना पड़ता है !"

उस लड़की से रहा न जा सका—"किन्तु एटम-बम तो जो शेष है उसे भी विनष्ट कर डालेगा, आप लोगों को तो एटम - बम के विरुद्ध सबसे आगे होना चाहिए !" वह एक प्रोत्साहित बुद्धिमता से बोली।

"हम एटम बम से नहीं डरते बीबी।"

लाला जी बोले—"कल का गिरता आज गिरे!"

लड़की मौन रही —

"इतनी अपेक्षा की आवश्यकता नहीं लाला जी!" अधेड़ आयु के व्यक्ति ने कहा—"चिढ़ तो ईश्वर से भी हो जाती है और कहा जाता है, कि हे ईश्वर अब शीघ्र उठा ले। किन्तु मरने को किस का मन मानता है?"

"हां" लाला जी ने ज़ोर से कहा—"बहुत खा-पी लिया है, नदी किनारे के तरु की क्या, कल का गिरता आज उखड़ जाए!"

"किन्तु लाला जी, एटम बम ने नदी-किनारे के तरु को ही नहीं उखाड़ना। उसने तो पास-दूर के सब खेत नगर भी विनष्ट कर डालने हैं!" अधेड़- आयु के व्यक्ति का इस कथन से भाव यह था कि एटम बम का भय बुजुर्ग लाला से अधिक उसके जवान अनजान पूत-पोतों को है। उसका विचार था कि यह संकेत लाला जी को आंतकित करने के लिये पर्याप्त होगा।

किन्तु बूढ़े लाला को पूत-पोतों से मोह भी आज निष्पुण हो गया था। गाहकों ने कम से कम दस थान खुलवाए थे और गज़ कपड़ा भी नहीं फड़वाया था। और जब पूरे दो वर्ष से दुकान में कोई आय न हो रही हो, तो पूत-पोतों का मोह कोई किस घाव पर लगाए?

"डूब जाएं, खेत-नगर भी तबाह हो जाएं!" लाला जी लोहे के बन बैठे थे।

"नहीं लाला जी! इस प्रकार नहीं कहना चाहिये।" चंदा मांगनें वाले मनुष्य ने सुशील बन कर कहा—"यह लाभ तो उमर भर

उठाए हैं और फिर कमाऊ रहेंगे ! एक-दो वर्ष तक मंदा रहने से क्या बिगड़ जाता है आप ऐसे लखपतियों का ?"

"लाख जाएं कुएँ में सरदार जी ! यह सरकार अब लखपतियों को यहाँ पंजाब में नहीं रहने देती ! देखो तो सही इस अमृतसर में क्या बुराई थी, इसे क्यों नहीं राजधानी बना लेते ? क्यों इन्होंने अमृतसर को उजाड़ने की सोची है, सरदार जी ! कोई ऐसा ढंग की बातें कीजिये ---यह एटम-बम बाद में देख लेना ।

"यह भी करेंगे लाला जी, किन्तु आज की बात तो शांति के संबंध में है !" वह सरदार कहने लगा ।

"यदि बम गिर पड़ा तो अमृतसर ही नहीं, दिल्ली भी उजड़ जाएगी !" वह लड़की जैसे फिर झपटती हुई बोली ।

"और क्या बीबी !" लड़की की यह बात लाला जी के मन की किसी तार को छेड़ गई थी —"यदि अमृतसर नहीं बचता पाकिस्तान से, तो दिल्ली भी नहीं बचती !"

"किन्तु लाला जी, पाकिस्तान बेचारा कौन है अमृतसर को ढाने वाला, उसे तो अपनी चिन्ता पड़ी हुई है, भूल जाओ अब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के वैर !" सरदार यह बात स्पष्ट करना चाहता था, किन्तु फिर शुद्ध सोच कर मौन हो गया ! यह बात लाला जी को नहीं जँचती, शायद उसने सोचा ।

"एटम-बम तो काल की भांति हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों पर गरज रहा है !" वह लड़की फिर जोश में बोली ।

"एटम-बम से हम नहीं डरते बीबी !" लाला जी पुनः पहले पैंतरे पर आ टिके—"कल का चलता आज चल जाए ! एटम बम से चाहे

जी भर डरा लो हमें !''

'नहीं' लाला' जी, हमने किसे डराना है, आप क्यों एटम बम से डरें ?'' सरदार कुछ खीझ गया मालूम होता था।

लाला जी उसे इस प्रकार भी चिढ़ाना नहीं चाहते थे—

''बात तो वास्तव में यह है सरदार जी, कि आजकल मंदा रहने से मन में खलबली सी मची रहती है। किन्तु कोई बात नहीं, यदि फिर कभी अवसर लगा तो हम आपकी अवश्य कोई सेवा करेंगे !'' लाला जी ने 'पतियाने' के लिये कहा—

''कोई बात नहीं जी, इसी तरह सही, फिर किसी अवसर पर सही !'' सरदार ने हंस कर कहा और नमस्कार कह कर दुकान पर से उतर आया—

''इन्हें एटम-बम का क्या भय है ? एटम-बम तो इनका मिली शाशक है।'' चिढ़ी हुई लड़की ने अपने साथी से दुकान के बाहर मिल कर कहा।

*　　*　　*　　*

यहां से चल कर वे दोनो एक प्रकाशक की दुकान पर आए। यह प्रकाशक पचास—एक आयु का सुंदर स्वास्थ्य वाला, सुखी, संतुष्ट सिक्ख था, और इस शिक्षित चंदा मांगने वाले का अच्छा परिचित था। यह लड़की कुछ दिन पहले अपने अन्य साथियों के साथ इस प्रकाशक के पास इसी एटम-बम विरुद्ध सम्मिलन के चंदे के लिये एक

निष्फल चक्कर काट चुकी थी, किन्तु यह बात उसने आज वाले साथी को नहीं बताई थी। वह इतनी कच्ची नहीं थी, कि एक बार किसी से कोरा जवाब सुन कर अपने साथियों को बता दे और उनका उत्शाह भी ठंडा कर दे।

प्रकाशक महोदय अपनी बड़ी भारी दुकान के पिछले आंगन में खड़े थे, तब इन भिक्षुकों ने आ अलख जगाई। प्रकाशक महोदय अपने सुपरिचित की आवाज़ सुन, अपनी व्यस्तता छोड़ कर बाहर आ तो गए, किन्तु तत्काल उस लड़की की ओर देख कर कहने लगे—"ये तो पहले ही मेरे पास से हो गए हैं और मैंने इन्हें कुछ नहीं दिया था।"

"किन्तु आज तो कुछ न कुछ देना पड़ेगा!" दूसरे भिक्षुक ने कहा।

"आपके मुंह को दे दूंगा, यदि कहें तो; किन्तु मुझे यह बताइये कि इस प्रकार अपीलें करने तथा हस्ताक्षर करवाने से क्या एटम-बम वाले भय मान जाएंगे? नहीं जी, आपकी दौड़धूप मुझे व्यर्थ सी प्रतीत होती है।"

"आपकी बात सत्य हो सकती है, किन्तु हम बैठे भी तो नहीं रह सकते। एटम-बम वालों के विरुद्ध हम जनता के पास यही शस्त्र है।"

"इस शस्त्र से कुछ नहीं बनेगा।"

"क्या पहले भी हिंदुस्तान में से इसी शस्त्र से अंग्रेज़ों को नहीं निकाला गया?"—शिक्षित व्यक्ति ने अपनी ओर से देश के पूंजीपति-वर्ग को जांचने वाली बात की।

"इस शस्त्र से अंग्रेज़ नहीं गए महोदय।" प्रकाशक सहित अपने वर्ग के दावे के बावजूद सत्यपक्ष में होके बोले—"अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने जाने के लिये विवश कर दिया, और उन्होंने विचारा कि यदि और अधिक अटके, तो तुम्हारे साथी भुतने जनता के मुखिया बन जाएँगे।"

"तुम अमीर-लोग जानते तो सब कुछ हो।" चंदा माँगने वाले ने हंस कर कहा—"किन्तु मानते कभी कभी हो।"

"और फिर अंग्रेज़ चले कहाँ गए हैं !" प्रकाशक महोदय जैसे अपनी मध्यश्रेणी को झुटलाने पर तुले हुए थे—"कट के कहीं नहीं गए।"

"यह भी सर्वथा सत्य है, किन्तु जब कोई दूसरा यही बात कहता है तो आप क्यों नहीं मानते ?"

"प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को जांचने वाली बात ही मानता है। मैंने भी अब शांति की अपील के विशय में जनशक्ति को झूठा प्रमाणित करने के लिये यह बात कही है, और आप भी एक प्रकार से यह मान गए है, कि अंग्रेज़ यहाँ से जनता के ज़ोर से नहीं गए।"

प्रकाशक महोदय की इस तर्क की सतर्कता का उत्तर, चंदा माँगने वाले मुस्कराहट से ही दे सकते थे, और फिर उन्होंने चंदा भी तो लेना था।

"खेर देखिये—"चंदा माँगने वाला फिर बोला—"जनता को एटम-बम के विरुद्ध सावधान करना भी तो जातिकार्य है। अब तक तो हम ने हीरोशमा और नागासाकी पर एटम बम चलाने वालों का विरोध भी नहीं किया।"

"आप जी भर कर विरोध कीजिये, अमेरिका को इस बात की क्या

परवा है।" प्रकाशक को अन्तर्राष्ट्र-सहानुभूति को प्रेरणा मिल गई थी।

"यदि जनता दृढ़ चित्त से एटम-बम का विरोध करेगी, तो अमेरिका को परवा करनी पड़ेगी। और एशिया की जनता को तो अधिक सावधान होना चाहिये, क्योंकि इस समय अमेरिका का ध्यान कुछ एशिया की ओर अधिक हो रहा है! चीन में बड़े ज़ोरों से अनतर हार खा कर, हिंद-चीनी में फ्रांस की सहायता पर आ डटा है।"

"नहीं, अब उसे एटम चलाने की आवश्यकता नहीं, अभी उसके पास डालर चलाने को हैं।"

"किन्तु चीन में तो डालर चल न सका!"

"चीन में अभी कौन सी शांति हो गई, फ़ारमूसा में से न जाने क्या करवट बदले।" एशिया के अत्यधिक मध्यवर्ग के अमीरों की भांति चीन में साम्यवादियों की विजय एक कदम था। यह एशिया की विजय थी और डालर की पराजय, और अभी उसने स्वंय से निर्णय नहीं किया था कि वह एशिया के साथ है या डालर के साथ।

"फिर बोलिये न?" चंदा माँगने वाले ने अपनी बात पर मुड़ते हुए कहा।

"आप ही कह दीजिये।"

"हमने आपका नाम पच्चीस रुपए वालों में रक्खा हुआ है, यदि एक सौ एक कर दें तो......"—चंदा माँगने वाले ने सख्यभाव की हंसी से कहा।

"अरे भई इतना आघात।—यह लो दस रुपए।" प्रकाशक महोदय ने पाँच २ के दो नोट पकड़ाते हुए कहा।

"अच्छा, जैसे आपकी मरज़ी।" चँदा माँगने वाले ने कहा—"किन्तु यदि हमारी पूंजी सम्मेलन के वक़्त कम हो गई, तो हम आप से पंद्रा रुपये और लेने आएंगे।"

प्रकाशक महोदय मुस्करा पड़े—"आज तो आप पीछा छोड़ें, भविष्य की बात कौन जाने।"

चंदा माँगने वाले ने रसीद काट दी और चलने लगे, तो प्रकाशक महोदय ने जैसे कोई भूली बात उन्हें स्मरण कराने के लिये रोक लिया—"मैंने कहा—आप संसार की चिंता कम किया कीजिये और अमृतसर की अधिक।"

"अमृतसर भी सुखी हो जाएगा, यदि युद्ध का आतंक हट जाए।" चंदा मांगने वाले ने कहा—"पाकिस्तान को हमारा शत्रु इन एटम-बम वालों ने ही बनाया हुआ है।"

"पाकिस्तान की बात नहीं। आपने सुना नहीं, कल यहाँ बड़ी वर्कशाप के सामने क्या हुआ है?"

चंदा मांगने वाला तनिक चौंक उठा—"हैं! वर्कशाप के सामने कल क्या हो गया?" उसने अचंभित होकर पूछा।

"कुछ गुंडों ने एक ग़रीब की पत्नी छीन ली, सामने तनूर पर से रोटी खाती को उठा कर ले गए!"

चंदा मांगने वाले को ऐसे प्रतीत हुआ जैसे इसमें वर्कशाप के मज़दूरों के लिये कोई ताहना छिपा हुआ हो। किन्तु उसने यह समाचार दो दिन पहले अखबार में पढ़ लिया था। —किस प्रकार दो दिन हुए, एक मर्द अपनी स्त्री को लेकर एक

तनूर पर आया था और उसे बिठा कर स्वयं चला गया था । और उसके पीछे से वह लड़की लुप्त हो गई थी। इसके बाद दो दिन हुए किसी गांव के दो व्यक्ति इस वर्कशाप में उसे किसी के पास देखने आए थे, तो उस लड़की ने उस लड़के तथा उसकी माता को देख लिया था। या उन्होंने उस देख लिया था और कोलाहल मचा दिया था। कम से कम पुलिस की कहानी यह थी।

"हां, यह बात-तो बहुत बुरी है। किन्तु इसका इलाज हम—तुम तो नहीं कर सकते। इसका इलाज तो राज्य प्रबंधकों के पास है!"

"आप एटम-बम का इलाज तो कर सकते हैं, परन्तु इतनी सी बात का नहीं कर सकते!" प्रकाशक महोदय ने विजय के भाव से तन कर कहा। किन्तु चंदा मांगने वालों को अधिक न रोका।

* * * *

हाल बाज़ार में एक कांग्रेसी मित्र मिल गया। यह महाशय मंत्री महोदय को, जो डाक बंगले में उतरे हुए थे, मिलने चले थे। कांग्रेस के जोशीले कार्यकर्त्ता होने के कारण इनका मंत्री आदियों से अच्छा मेल-जोल था। जिसका भाव यह भी है कि उन अमीर लोगों—व्यापारियों के साथ भी यह परिचिति थे जिनको मंत्रियों तक प्रायः काम पड़ता था। चंदा मांगने वाले ने अपना आशय जताया और एक अन्य कांग्रेसी नेता का जो इस एटम-बम विद्रोही आंदोलन में भाग ले रहे थे, हवाला दिया।

"आइये, फिर डाक बंगले में अभी मेरे साथ!" उस कांग्रेसी

-मित्र ने चंदा मांगने वाले के कंधे पर हाथ मार कर कहा—"मेरे साथ ही तांगे में बैठ जाइये, वहाँ लाला हरबंस लाल तथा सरदार भरपूर सिंह मिलेंगे। दोनों अच्छे दानी पुरुष हैं। किसी चंदे वाले को नहीं लौटाते—कांग्रेस को चंदे देते हैं। राष्ट्र संघ को देते हैं। संभवत: शांति के लिये भी कुछ हाथ झाड़ ही देंगे! वैसे भी मंत्री जी से मिलने को आने वाला खुली वृत्ति में होता है!" कांग्रेसी-मित्र ने हंस कर बात समाप्त की।

ये दोनों उस मित्र के साथ तांगे पर चढ़ बैठे! मंत्री जी के डाक बंगले के द्वार के बाहर ही लाला हरबंस लाल की कार उन्हें आती मिल गई। उसने कार खड़ी कर ली। पंद्रह-बीस मिनट वे कांग्रेसी-मित्र के साथ बातें करते रहे, जिनके अंत में एटम-बम विरोधी आंदोलन की चर्चा भी छिड़ी! लाला जी ने तत्काल पचास रुपये दुकान पर से ले लेने का वचन दे दिया, जय जनता!

* * * *

"आज का भ्रमण कोई बुरा नहीं रहा!" लड़की ने दिनभर के काम का सिंहावलोकन करते हुए कहा, जब वे लाला हरबंस लाल की दुकान से पचास रुपये लेकर शांति सभा के कार्यालय की ओर मुड़े—"साठ रुपये ये हो गये और बीस रुपये प्रात: थे!"

"उन बीस में से भी दस रुपये एक परिचित सज्जन के ही हैं। वास्तविक चंदा तो वह दस रुपये ही हैं, जो एक २ रुपया दुकानों से मांग कर एकत्रित किया है!" उसके साथी ने तनिक उदासी के स्वर में कहा—"किन्तु कोई बात नहीं, दस भी पर्याप्त हैं!"

"और परिचित सज्जन भी तो जनता का ही भाग है !" लड़की ने उस का मन दृढ़ करने के लिये कहा।

कार्यालय पहुँचे तो पता चला कि एक साथिन किसी कालिज की स्त्रियों के पास से चालीस रुपए एकत्रित कर लाई है। लड़की की आंखें चमक उठीं—"जय जनता !" वह बोली।

"जय नारी—जनता !" उसके साथी ने तनिक परिर्तित करके दुहराया—

पचास रूपए एक प्रदेश की किसान-सभा की ओर से आए हुए थे और बीस रूपए नगर शिल्प संघ ने भेजे थे।

"साथियो !" चन्दा मांगने वाले ने भीतर बैठे नवयुवकों से कहा—"बाग़ में जाकर, बाज़ार में जाकर, एक २ रूपया, चार २ आने, आना आना एकत्रित करो। यह बड़े बड़े चन्दे सहायक हो सकते हैं, किन्तु शांति के आँदोलन में छोटे २ चन्दों को अग्रसर होना चाहिये !

राम लाल

तुम्हारा फ़ैसला क्या है ?

युग की आवाज़

रामलाल

तुम्हारा फ़ैसला क्या है?

पूरे पंन्द्रह दिन के बाद लाजवन्ती का पति घर लौटा था। वह भीतर कमरे में सो रहा था। लाजवन्ती प्रसन्न थी। वह अपने पति के विरुद्ध सारा गम और गुस्सा भूलकर जल्दो २ आंगन में सफाई कर रही थी। वह चाहती थी कि उसके सोकर उठने से पहले ही सब कामों से निपट ले; उन तमाम कामों से जो हर सुबह होते ही एक औरत के सामने आ जाते है और उन में कमी कभी नहीं होती।

उसने आँगन, बरामदा, तोनों बड़े कमरे बालकोनी और रसोई घर साफ़ कर चुकने के बाद, रात के जूठे बर्तनों का ओर घ्यान दिया। फिर चूल्हे की राख को कुरेद कर लकड़ियों पर तेल डाला और फिर उन पर कोयले रख दिये। कोयले दहकेन लगे तो केतली में चाय के लिये पानी डालकर उसे ऊपर रख दिया। फिर आटा गूंधने बैठीं ही थी कि बच्चों को जगाने का समय हो गया। इन्हें तैयार करके स्कूल भेजना था। जल्दी से अन्दर पहुँची। और उनके उपर से लिहाफ उतार कर उन्हें उठाया और जब रेखा और रवि अपने अपने पलंग से उत्तर कर फर्श पर खड़े आंखे मल रहे थे तो वह यह कहती हुई रसोई की ओर बढ़ गई, "अब फिर बिस्तर पर न लेट जाना, आठ बज चुके हैं! यदि तनिक भी सुस्ती की और स्कूल पहुँचने में देर हो गयी तो मैं नाश्ता नहीं दूंगी। ऐसे ही जाना होगा! समझे!"

कुछ क्षणों तक वह आटा गूंधती रही। जब उसने बच्चों की बातों से यह मालूम किया कि वे अपने पापा के अचानक घर लौट आने पर हैरान हो रहे हैं और उन्हें जगाने का निश्चय कर रहे हैं तो उन्हें वहीं से डाट बताई—"अरे रवि, रेखा! मेरी बात सुनो। पापा को मत जगाना। वे बहुत थके हुए हैं। अपना अपना ब्रश उठाकर गुस्लखाने में आजाओ।"

बच्चे बाहर आ गये। अपना ब्रश और तौलिया उठाये रवि ने पूछा—"मामा! पापा मेरे लिये फुटबाल लाये हैं?"

रेखा भी बोल उठी :—"उन्होंने कहा था। तुम्हारे लिए साईकिल लायेंगे।"

लाजवन्ती ने गुस्लखाने में जाकर नल खोल दिया जो दोनों बच्चों की पहुँच से बहुत ऊंचा था, और फिर रसोई की ओर बढ़ती हुई बोली, "कुछ भी नहीं लाये। यही वरदान है कि स्वयं आ गए हैं।"

चाय का पानी खौल रहा था। उसे उतार कर उसमें चाय की पत्ती छोड़ दी। फिर दूध का पतीला आग पर रख दिया; धोती के पल्लड़े को कमर के गिर्द लपेटा और बार-बार खुलते हुए लम्बे बालों को फिर से कस कर जूड़ा बांधा और फिर कमरे में यह देखने चली गयी कि उसका पति कहीं जाग तो नहीं उठा था। उसका पति गर्दन तक लिहाफ ओढ़े एक बाजू के नीचे मुंह छिपाये गहरी नींद में डूबा हुआ खर्राटे ले रहा था। बढ़ी हज्जामत और बिखरे हुये बालों के नीचे उसकी श्वेत और सुख त्वचा चमक रही थी। लाजवन्ती ने आगे बढ़कर कुर्सी की पीठ पर पड़े हुए कोट और पतलून उठाकर दीवार पर लटका दिये और रसोई में लोटने से पहले एक बार सिर घुमाकर

अपने पति को देखा ! लाजवन्ती की आँखों में मृदुल स्मित की फैलती हुई रेखायें थी और यूं लगता था। जैसे वह अड़ोस-पड़ोस में रहने वालों के अच्छेयों की तनिक भी परवाह नहीं करती थी।

ओवरस्सीयर की पत्नी ने कहा था:—"तुम्हारा पति जितना रुपया कमाता है, सब एक रँडो के हवाले कर आता है।"

दयानन्द ऐक्साइज़ इन्सपेक्टर ने एक बार स्वयं आकर कहा था:—"भाभी ऊपर की आमदनी का यह मतलब नहीं कि स्वार्थी मित्रों को शराब पिलाने में नष्ट कर दिया जाये। रुपया मैं भी कमाता हूं, किन्तु सुधि बुद्धि को तो नहीं गवाँता। भगवान् ने चाहा तो अगले साल इस फलैट को छोड़कर अपने निजी मकान में जा रहूंगा जो बशीरगंज में बनवा रहा हूं।"

यह सब सच था और जो बातें वे नहीं कहते थे, वे भी वह जानती थी। हमेशा रो रोकर और घुल २ कर दिन गुजारती थी। ये पँन्द्रह दिन जो उसके पति ने बिना कुछ बताये बाहर गुज़ार दिये थे उसने बड़ी ही कठिनता से काटे थे, क्योंकि उस बीच में राशन खतम हो गया था, और उसे नौकर को हटा देना पड़ा था। उसके पास इतने रुपये नहीं थे, कि वह पहले सी आसानी के साथ खर्च चलाती। जैसा कि लोग कहा करते थे एक दिन वह तुम्हें छोड़ देगा। उसने इस बार तो विश्वास कर ही लिया था; किन्तु कल रात को दो बजे जब वह अचानक वापस आ गया था तो वह अब कुछ भूल गयी थी। अपना ग़म, अपना क्रोध, अपनी शिकायतें, और इस प्रकार उसकी भुजाओं में सिमट गयी थी जैसे कोई बात ही न हुई हो।

अब उसे केवल एक चिन्ता थी कि वह उसके खाने के लिये क्या बनाये ! कई दिनों से सेवह बच्चों क साधारण प्रकार का खाना

दे रही थी। तरकारी और गोश्त बनाये कई दिन हो गये थे। आज उसने मारकेट जाकर सब चीजें लाने का निश्चय कर लिया था।

रवि नहाने के बाद क़मीज़ और नेकर पहन रहा था। लाजवंती ने रेखा के जल्दी जल्दी बाल संवारे, इनमें रिबन डाला और फिर उन्हें अपनी अपनी पुस्तकें इकट्ठी करने के लिये कहती हुई रसोयी में जा बैठी।

रवि नौ वर्ष का था, रेखा छः वर्ष की थी। दोनों ने अपनी अपनी पुस्तकें आंगन में लाकर चारपाई पर रख दीं और रसोये में नाश्ता करने चले गये।

लाजवती उनके सामने नाश्ता रख कर स्वंय कपड़े बदलने भीतर चली गयी। पिछली रात की मैली धोती उतार कर श्वेत शलवार, और नीली छींट को रेशमी कमीज़ पहन ली और पयाज़ी रंग का दुपट्टा कंधों पर डाल कर बालों को फिर से कसकर जूड़ा बांधती हुई दर्पण के सामने जा खड़ी हुई। बंधे कसे बालों पर तनिक सी कंघी फेरी और फिर हाथ में खाली थैली उठा कर पति के पास जा खड़ी हुई।

"मैंने कहा, सुनते हो ?"

इसके पति ने पहलू बदल कर मुंह फेर लिया।

"सुनो तो, मैं जरा मारकेट तक जा रही हूँ।"

"ऊंह।"

"मैं रवि और रेखा को स्कूल छोड़ कर मारकेट चली जाऊंगी। आपके लिये आज गोश्त लाऊंगी। तब तक आप नहा लेते तो अच्छा था। आज पहली तारीख भी है, दस बजे जाकर वेतन भी ले आओ ताकि बारह बजे तक राशन लाने का प्रबन्ध हो सके; सुना आपने ?"

उसके पति ने कोई उत्तर न दिया। लाजवंती ने दीवार पर लटके हुये उसके कोट में हाथ डाला। केवल दो आने निकले। उन्हें वहीं डाल दिया और रसोई में जाकर चीनी के डिब्बे में से कुछ रेज़गारी निकाली, जिसे वह अपने पति से छिपा छिपा कर रखने की आदी हो गयी थी। वह बच्चों को लेकर बाहर निकल आयी। बाहर वाले द्वार को धीरे से बन्द किया और केसर बाग़ के चौराहे की ओर बढ़ी। रवि और रेखा उसके दायें बायें कंधों से बैग लटकाये चल रहे थे। उसने रवि के स्वेटर को एक जगह छूकर देखा जहां उधडा हुआ था, बोली—"आज तुम्हारे पापा वेतन लायेंगे तो तुम्हें एक नया स्वेटर बुन दूंगी।

"मम्मी, मेरा स्वेटर।" रेखा ने अपने तंग गर्म फ़राक में सुकड़ते हुये कहा।

"हां तुम्हे भी—पहले वेतन तो आये—कितनी चीजें खरीदनी है।"

"मां, हमारे पापा तो हमारी इतनी परवा नहीं करते जितनी तुम करती हो।" रवि ने लगभग माँ के साथ चिमटते हुये पूछा।

"यह तुम कैसे कहते हो बेटा। उन्हें तुम्हारा ख्याल न होता तो वे घर क्यों लौट आते।"

"मम्मी! वे चले कहां जाते हैं? वे बहुत कम दिन घर पर रहते हैं।"

"मैं क्या जॉनु! आपने पापा से पूछो"।

लाजवन्ती ने बच्चों को अमीनाबाद के क्रासिंग पर छोड़ दिया और स्वयं केसरबाग़ की मारकेट में लौट आयी। आध सेर मटन

लिया–आध सेर टमाटर, और सेर भर प्याज़। थैला काफी बड़ा था। दो प्रकार की तरकारी भी ले आई। दूसरे दिन के नाश्ता के लिये डबल रोटी और आधा दर्जन अण्डे भी लिये। नकदी खत्म हो गई थी। थैला भर गया। कुछ चीज़ उसे खाली हाथ में उठानी पड़ी। दोनों हाथों में सामान लिये वह जल्दी २ लौटी।

तीस वर्ष की युवा, स्वस्थ और पतले लम्बे शरीर की लाजवंती घर की ओर लौटते समय सोचती चली आ रही थी कि उसने एक रुपा और उठा लिया होतो तो मीठे टोस्ट बनाने के लिये मलाई भी खरीद लायी होती। वह चाहती थी कि आज अपने पति को अत्युतम प्रकार का भोजन खिलाये। मीठे टोस्ट वे बड़ी सर्च से खाते थे।

उसे जाने में आध—घन्टा लग गया। जब वह निशात सिनेमा के सामने से गुज़री तो धूप काफ़ी फैल चुकी थी। सिनेमा के विज्ञापन बांटने वाले बैन्ड साथ लिये नगर के दौरे पर रवाना हो रहे थे। सड़क पर दफ्तरों और कालेजों को जाने वालों का ताँता बंधा हुआ था। उसने अपने फ्लैट के नीचे पुराने फरनीचर के दुकानदार से अपने पुराने कालीन के विषय में पूछा जो उसने कई दिन पहले उसे बेचने के लिये दिया था और फिर उसे यह कहती हुई ऊपर चली गयी—"हां वे आ गये हैं। सोये हुये हैं।"

उसने कुहनी के साथ ताक को हलका सा धका दिया। आंगन में से गुज़र कर रसोई की ओर बढ़ गयी। गुज़रते समय यूं ही कमरे की ओर देखा और यही खयाल किया कि उसका पति अभी तक सो रहा था। तमाम चीज़ें उसने व्यवस्था से रख दीं। अंगीठी पर डाले हुये पत्थर के कोयले खूब दमक उठे थे। उसने शीघ्रता से पयाज़ काटे,

घी डाल कर मसाला भूना—और गोश्त धोने के लिये नल की ओर लपकी, तो उसे यूं लगा कि जैसे उसका पति भीतर नहीं सो रहा है। यह विचार अनायास ही उसके मस्तिष्क में उभरा और उसका दिल धड़क उठा। वह गोश्त का बर्तन लिये भीतर चली गयी—पलङ्ग खाली था। उसने दूसरे पलङ्ग पर दृष्टि डाली। वह वहाँ कैसे हो सकता था? उसने इधर उधर देखा। जूतों के रेक से ब्रोन स्यूड के जूते गायब थे। वह ज़रूर चला गया होगा—उसे विश्वास आ गया। दीवार पर ग्रेस्ट्राइप सूट भी न दिखादी दिया। उसने फिर भी बाकी दो कमरों में जाकर देख लिया। आज पहली तारीख है! वेत नलेने गया होगा। लेकर आता ही होगा। उसे मैंने बता दिया था कि आज घर में राशन नहीं है। उसने घर की दुर्दशा का स्वंय ही अनुमान लगा लिया होगा।" बिजली का खर्च बचाने के लिये इसने केरोसीन लैम्प जलाना आरम्भ कर दिया था। वह अपने मन को संतावना देती हुई फिर नल पर चली गयी। गोश्त को धोया, किन्तु उसके हाथों से वह फ़ुरती गायब हो गयी थी जो इसे कुछ देर पहले एक मशीन बनाये हुई थी।

लाजवन्ती और उसके बच्चों ने शाम तक प्रतीक्षा की। फिर रात पड़ गयी। ज्यूं ज्यूं रात गहरी होती गयी, उसके अंतस की निराशा बढ़ती गई। उसके पति का कोई पता नहीं था। उसने अड़ोस पड़ोस से भी पता नहीं किया। वह जानती थी वे लोग उससे सहानुभूति करने के बजाय उसका मज़ाक उड़ायेंगे।

उसका पति वेतन लेकर फिर ग़ायब हो चुका था। बालकोनी में कुर्सी के समीप केरोसीन लैम्प रखे और रेखा के फराक पर स्मोकिंग करते हुए उसने अपने पति के कुकृतों पर दृष्टिपात किया।

ऊपर की आमदनी ने उसकी आदतों को बिगाड़ दिया था। उस

ामदनी के कारण घर के अन्य खर्चों में इतनी वृद्धि हो गयी थी कि अब जबकि पति बिलकुल सहायता नहीं देता था, उसे इन खर्चों में कमी करते हुये बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। इसका पति कोर्ट इन्सपैक्टर था। वह केवल उस नौकरी के कारण बुरी आदतों का शिकरर नहीं हुआ था। इससे बहुत पहले अविभाजित पंजाब में जब वह मिलिट्री के इन्सपैक्शन डिपो में सुपरवायज़िर था। तब उसका नया विवाह हुआ था। उन दिनों वह दोनों हाथों से लूट रहा था। कौन था जिसें इस विषय न ज्ञान नहीं था। इसी कारण लोग कहते थे कि जिसने पहले कभी धन का मुँह न देखा हो, वह अन्धा हो ही जाता है। वह वास्तव में ही अन्धा हो गया था।

अचानक उस पर मुक़दमा चल गया। मुक़दमा भी दो साल तक चलता रहा। जितना रुपया कमाया था उसका अधिक भाग उसी मुकदमे में लग गया। यही वरदान था कि वह मुक़दमे से बरी हो गया। जितना रुपया बचा था। वह भारत आकर लॉ पढ़ने में खर्च हो गया। जब वह पढ़ रहा था तब भी धन कमाने की इच्छा उसके मन में थी। वह कहा करता था, वकील बन कर फिर लाखों रुपये कमाऊंगा। इसमें कोई खटका तो न होगा; ईमानदारी की कमाई होगी। शत प्रति शत ईमानदारी की। लेकिन वकालत न चली। बत फाकों तक आ पहुँची तो मुख्तार की जगह ले ली। कुछ न कुछ ऊपर की आमदनी भी होने लगी। शक्कर खोर को शक्कर मिल ही जाती है। भाग्य में उन्नति का एक और अवसर लिखा था। अफ़सरों से मिलकर कोर्ट इन्सपेक्टर नियत हो गया।

लाजवंती सोच रही थी, अपने पति के चरित्र के पतन में उसका हाथ भी था। उसने पूरी सत्यता से अपने चरित्र पर दृष्टि डाली।

गत बारह वर्षों में उसने एक बार भी ऐसा प्रयत्न नहीं किया था, जो उसके पति को पतन के गढ़ेह में गिरने से बचा सकता था। जब तक वह उसे जी भर कर खर्च करने का अवसर देता रहा, उसने कभी भी बुरे दिनों के विषय में नहीं सोचा। अब जबकि वह उसे कुछ नहीं देता था बल्कि किसी उन्यस्त्री की गोद में जा डालता था तो वह बैठी आंसू बहा रही थी। जितना रुपया उसने बचा कर रखा था, धीरे २ खत्म हो रहा था। अब केवल कुछ हज़ार रुपययों के आभूषण बैंक में थे। उसे केवल उन रुपये के कारण कुछ धैर्य था कि बच्चों की शिक्षा आदि के काम आ सकेंगे। यह सोचते सोचते उसने फ्राक हाथ से रख दिया और जल्दी से उस ट्रंक को खोलने लगी जिसमें सेफ डिपाजिट की चाबी रखी हुयी थी। उसने तमाम कपड़े उलट पलट दिये। उसके माथे पर ठण्डे पसीने की बून्दें उभर आयीं। उसने घबरा कर दूसरे अटेची और सूट केस भी छान डाले, जिनके विषय में उसे विश्वास था कि चाबी उन में नहीं रखी गयी थी। वह हाथों में सिर दबोच कर सिसकने लगी। नानपरा हाउस के छे कमरों वाले फ्लैट में उस रात वह बिलकुल असहाय थी। उसके पास चीनी के डिब्बे में केवल तीन रुपये नौ आने पड़े थे। उसकी आंखों के सामने एक नर्क मुंह खोले खड़ा था। उसका या उसके पति का कोई ऐसा भाई भी नहीं था जिसके पास वह जाकर प्राथना कर सकती।

उसकी रोने की आवाज़ सुन कर रवि और रेखा जाग पड़े। हैरान माँ के पास आकर खड़े हो गये। खुले हुये ट्रंक और सूटकेस देखकर रवि ने पूछा—"मम्मी, यह क्या हुया ? कौन आया था ?"

यह सुन कर लाजवंती के अन्तरस की गहन गहरायीं में से

किसी ने पुकार कर एक चोर का नाम लेना चाहा, किन्तु उसने उस आवाज़ को वहीं दबा दिया, अपनी सिसकिया रोक लीं, अपने आँसू पूछे डाले, बिखरी हुयी वस्तुयों को समेटती हुयी बोली—"कोई नहीं आया था।तुम चलो—जाकर सो जाओ। मैं आती हूँ।"

दूसरे दिन सुबह उसने बच्चों के साथ मिल कर बासी खाना खाया। उसी समय ऊपर से साथ के फलैट में रहने वाला दयानन्द आ गया। वह समझ गयी कि आवश्य कोई सूचना लाया होगा। वह नहीं चाहती थी कि बच्चे इस सूचना को सुनें, लेकिन उसने आते ही कह डाला—"भाबी, उसने तो एक महीने की छुट्टी ले ली है और उस रण्डी को लेकर कानपुर चला गया है।"

"रण्डी कौन है, मम्मी?" रवि ने खाने से हाथ रोक लिया।

लाजवन्ती ने अवश होकर उसके मुंह पर थप्पड़ दे मारा और चीखकर बोली—"हज़ार बार तुम्हें कहा है, अपने काम से मतलब रखा करो।"

रवि खाना छोड़कर रोता हुआ दूसरे कमरे में चला गया। रेखा सहमी हुई थाली में हाथ धरे बैठी रह गई। लाजवन्ती स्वयं रोती हुई उठ कर खड़ी हो गई और दयानन्द से बोली—"तुम झूठ बोलते हो! मैंने तुम्हें कई बार कहा है, कि मेरे सामने ऐसी बातें न किया करो, आखिर तुम्हारा मतलब क्या है?"

लाजवन्ती को रोता देखकर दयानन्द चुपचाप वापिस चला गया। वह अन्दर जाकर रवि को मनाने लगी—"चलो बेटा खा लो। चलो न। अच्छे बच्चे रोया नहीं करते।"

एक सप्ताह व्यतीत हो गया। इस बीच में अड़ोस-पड़ोस से उसने कई बातें सुनीं। सबसे ज़हरीली बात सिनेमा के मैनेजर इन्द्रसिंह की माँ

-न की—"इस औरत में अब रखा ही क्या है ! न शक्ल न सूरत, इसका घरवाला ठहरा रंगीला ! रंगीले को तो एक रंगीली ही वश में रख सकती है।"

उस दिन उसने अपने आप को दर्पण में ध्यान पूर्वक देखा—

उसके गाल पिचक गये थे। आंखों की निस्तेज हो गई थी। उसके होंठ और बाल भी अपनी चमक दमक खो बैठे थे। पतला, लम्बा शरीर अब किसी दिन, किसी समय शिथिल होकर गिर पड़ना चाहता था। किन्तु वह बच्चों की ओर से विमुख नहीं होना चाहती थी।। वह उनकी शिक्षा और उनके पालन पोषण के लिये प्रत्येक त्याग के लिए तैयार थी। मकान का किराया देना असम्भव न था। उसने फर्नीचर वाले दुकानदार को अपना सारा सामान दिखाया और उसके औने-पौने दाम लेकर मकान बदल लिया। एक तङ्ग और अन्धेरी गली में एक कमरा पन्द्रह रुपये मासिक किराए पर मिल गया जिसमें न प्रकाश का गुज़र था, न हवा का। एक सिंगर मशीन जो उसने नहीं बेची थी, उसके काम आने लगी। अड़ोस-पड़ोस के कपड़े सीने को मिल ही जाते थे।

एक दिन बच्चों की फ़ीस देने के लिये पैसे नहीं थे। रवि चिल्ला कर बोला—"मम्मी अब के तुमने पापा को इस घर में पांव भी रखने दिया तो अच्छा न होगा।"

लाजवंती ने उसकी ओर विस्मित होकर देखा—दस वर्ष की आयु में बच्चा परिस्थितयों को कितनी तेज़ी से समझने का प्रयत्न कर रहा था—किन्तु वह कितनी कटु बात कह रहा था। अपने बाप को घर में दाखिल नहीं होने देगा। जैसे इसका बाप सचमुच ही आने वाला था। एक वर्ष से तो उसने इनकी कोई सुधि नहीं ली थी। लाजवंती ने

अपने आसूँ रोककर रवि के गाल पर प्यार से हलका सा थपड़ लगाया, "पागल कहीं का !"

रवि ने मां का हाथ रोक लिया और बोला—"तुम मम्मी किसी पाठशाला में नौकरी क्यों नहीं कर लेतीं ।"

"मैं ? मेरे बच्चो, अब मैं इतनी बड़ी हो गयी हूँ । कौन नौकरी देगा मुझे ?"

रवि सोचकर बोला—"मम्मी, हमारे स्कूल के पास एक पुस्तकघर है । मैं यदि प्रतिदिन कुछ समय निकालकर उससे कमीशन पर पत्र-पत्रिकायें लेकर बेचा करुं, तो कमसे कम मेरी और रेखा की फीस के लिये पैसे तो निकल आयेंगे ।"

मां को मौन देखकर रवि ने मैली फटी नेकर की जेब में हाथ डाले और निर्णयात्मक स्वर में बोला—"तो अच्छा मैं जाता हूं, मम्मी, आज यही काम करूंगा । फीस के लिये पैसे बन गये तो स्कूल जायेंगे ।"

इसी समय द्वार पर दस्तक हुई ।

"बाहिर देखो तो कौन है ।"

वह लपक कर बाहिर गया और थोड़ी देर बाद आकर बोला—"जाने कौन है । मैंने पहले कभी उसे नहीं देखा । कहता है अपनी मम्मी को बुलाओ ।"

लाजवन्ती ने रेखा को गोद से अलग किया और द्वार की ओट में खड़ी होकर उस आदमी की ओर देखा । अधेड़ उम्र का श्वेत और काले मिले जुले बालों पर पुराना जर्जर सा हैट जमाये, एक पुराना नीला कोट पहने साइकल थामे खड़ा था । साइकल के पीछे कैरियर पर बहुत

सी फाइलें बंधी हुई थी। कुछ क्षण ध्यान पूर्वक देखने के बाद वह उसे पहचान गई और सामने आकर हाथ जोड़ते हुये बोली—"आओ जी ! नमस्ते !"

उस आदमी ने मुस्कराकर भारी किन्तु मीठ मृदुल स्वर में कहा —"कहो लाजवंती मुझे पहचाना कि नहीं।"

"जी पहचान लिया—आइये अन्दर आ जाइये।" लाजवंती सिर झुका दरवाज़े से पीछे हटते हुये बोली। उस आदमी ने साइकिल ड्योढ़ी में लगा दी। रवि और रेखा के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुये बोला।

"ये तुम्हारे बच्चे है, न ?"

लाजवंती ने अन्दर जाकर एक ट्रंक पर कपड़ा बिछा कर उसके बैठने की जगह बना दी।

वह बैठकर बोला—"कल मैं इधर से गुज़रा तो तुम्हें सामने सड़क के नल पर से पानी भर कर अन्दर आते हुये देखा। मैंने सोचा—है तो लाजवंती। पन्द्रह वर्ष के बाद तुम्हें देखा था। याद है जब तुम स्कूल में पढ़ती थीं ! मैं और तुम्हारा भाई हीरालाल तुम्हें तुम्हारे स्कूल पहुँचा कर अपने स्कूल जाया करते थे। हाँ वह कैसा समय था। सचमुच वह कैसा समय था ! लाजवंती !! हीरालाल मेरा गहरा मित्र था—। बेचारा ! पाकिस्तान बना—लाखों के घर उजड़ गये—! लाखों के —!"

लाजवंती के आँसू निकल पड़े। उस आदमी ने रवि को अपनी भुजाओं में ले लिया और सिर से हैट उतार कर पांव के पास रखते हुये बोला—"तुम रो रही हो लाजवंती—मेरे तो आँसू भी जल गये

हैं। तुम्हें मालूम है—मेरी पत्नि—मेरे बच्चे मेरा सारा परिवार साम्प्रदायिकता में ख़त्म हो गया, मगर तुम सच्ची हो। तुम्हें एक आग में निकाल कर दूसरी आग में धकेल दिया गया है। कल घनश्याम मिला था। उसने तुम्हारे विषय में मुझे सब कुछ बताया और आज मैं यहां आये बिना न रह सका। वह व्यक्ति कितना निर्मल है जो अपनी जान हथेली पर रख कर वहां से तुम्हें बचा लया लेकिन यहाँ आकर बिलकुल असहाय छोड़ दिया। ऐसा छोड़ा, कि फिर कभी खबर तक न ली आकर! मुझे मिले तो मार मार का मुंह फेर दूं। नालायक कहीं का! चार पैसे क्या कमाये, दिमाग़ तक ही खराब हो गया। सच है खुदा गंजे को नाखुन न दे।"

लाजवंती ने भर्रायी हुया आवाज़ में पूछा, "आप यहां कब आये?"

"मैं?—मैं तो यहां छः साल से हूँ। यहां रिफ्यूजी इन्पैक्टर हूँ। शरणार्थियों के कलेम आदि प्रमाणित करता हूँ।"

"आपकी एक लड़की जो—उसका कुछ पता चला।"

"कहां पता चला—।"—उसने एक ठण्डी साँस लेकर कहा।

—"पता चलता तो मैं यूं मारा मारा क्यों फिरता। सच कहता हूँ, बच्चों को प्यार करने के लिये तरस गया हूँ। जब किसी का बच्चा मेरे समीप आ जाता है तो जी चाहता है कि उसे सीने से लगा लूं और फिर अलग न करूं—परन्तु मेरा भाग्य ही ऐसा है। किसी का क्या दोष हो सकता है? मेरे जैसे हज़ारों व्यक्ति हिन्दु भी, मुसलमान भी आज स्वतन्त्रता का नाम सुनकर एक विचित्र सी बेबसी से इधर उधर देखने लगते होंगे।"

कुछ देर बाद वह आदमी चला गया तो रवि ने उसका नाम पूछा। लाजवती बोली—"हाफ़जाबाद में यह हमारा पड़ोसी था। इसका नाम कुन्दन लाल है।"

"बड़ा अच्छा मालूम होता है।"—रेखा ने कहा।

द्वार पर फिर दस्तक हुई। रवि और रेखा के पीछे लाजवंती भी पहुँची—लाला कुन्दन लाल अपने हाथों में मिठाई और बिस्कुटों के पैकेट लिये खड़ा था।

"इनकी क्या आवश्यकता थी।"

"यह बच्चे खायेंगे—आओ रवि ! ले लो बेटा इनको मिलाओ मुझ पर तुम्हारा अधिकार है।"

लाला कुन्दन लाल अपनी भारी मीठी आवाज़ में हंसता हुआ चला गया।

रवि ने बिस्कुट का पैकेट खोलते हुये पूछा "हमारे पापा ने क्या सचमुच हमें छोड़ दिया है।"

लाजवंती ने उसे घूरा—"नादान कहीं का।" अभी थोड़ी देर पहले वह अपने पापा के लिये घर के द्वार बंद कर रहा था।

रवि रुक गया। बिस्कुट का पैकेट हाथ से रख दिया।

और मां का हाथ पकड़ कर बोला—"यह बिस्कुट और मिठाई हमारे किस काम के ? उन्होंने हमें स्कूल के लिये फ़ीस ही दी होती।"

लाजवंती ने उसकी ओर रुष्ट होकर देखा और कहा।

"रवि तुम अभी उठो और उस बुकस्टाल पर जाओ।"

"अच्छा मां।" रवि उठकर बाहर चला गया।

"रवि कहाँ जा रहा है, मम्मी ।" रेखा ने मां के समीप खिसक कर पूछा ।

लाजवंती ने रेखा के माथे को चूमा और बोली,

"मैं कल तुम्हारे साथ चलूँगी । मुझे अपनी पाठशाला में नौकरी दिलवायोगी न ?"

रेखा ने कोई उतर न दिया । चुपचाप मां के सीने के साथ लगी रही । बिस्कुटों और मिठाइयों के अध-खुले पैकेट फ़र्श पर बिखरे पड़े थे । बाहर धूप पड़ जाने से कमरे में कुछ उजाला सा बिखर गया था ।

शाम को रवि केवल नो पैसे कमा कर ला सका । फीस का प्रबंध न हो सका ।

दूसरे दिन लाजवंती रेखा के साथ पाठशाला जाने पर तैयार हो गयी । रवि को फिर उसी बुकस्टाल पर जाना था । तीनों द्वार से बाहर निकले तो लाला कुन्दन लाल अपनी लदी हुई साइकिल के साथ खड़ा था । तीनों अन्दर वापिस चले गये । लाला कुन्दन लाल ने साइकिल ड्योढ़ी में रख दी, भरे हुये थैले उतार कर अन्दर ले आया ।

"यह थोड़े से चावल हैं ।"

"हम क्या करेंगे—बच्चों को तो भाते नहीं ।" लाजवंती ने अस्वीकृति की मुद्रा में कहा ।

"भाते क्यों नहीं—बड़े अच्छे है । मेरे एक मित्र देहरादून से उपहार लायें हैं ।"

लाजवंती को गहरी सोच में देखकर वह फिर कहने लगा—"मुझे पका कर देने वाला तो कोई है नही । तुम पकाओगी तो मैं भी खा सकूँगा । क्यों रवि, मुझे अपने साथ खिलाओगे न ?"

रवि ने उसके समीप खस्कते हुये माँ की ओर देखा जो ठण्डे चूल्हे के पास सिर झुका कर बैठ गयी थी। लाला कुन्दन लाल ने रवि को प्यार करते हुये पूछा —"सवेरे सवेरे तुम कहाँ जा रहे थे ?"

रवि ने कोई उतर न दिया। एक बार मां की ओर देख कर सिर झुका लिया।

"तुम्हारे तो स्कूल जाने का समय हो गया है। लाजवंती, क्या इन्हें स्कूल ले जा रही थी ?"

रेखा जो अभी तक मां की कमर के साथ लगी उसके बालों में उङ्गलियाँ फेर रही थी, यकायक तनकर खड़ी हो गयी और रोते रोते बोली—"मम्मी आप को कुछ नहीं बतायेगी। में बतीती हूँ। हमारे पास फ़ीस देने के लिये दाम नहीं है। रवि ने कल से समाचार पत्र बेचने की नौकरी कर ली है और मम्मी आज ...."

"चल झूठी कहीं की", लाजवंती ने घूम कर उसे पकड़ना चाहा, लेकिन उसे अपनी पकड़ से बाहर पा कर मुँह छुपा कर रोने लगी।

"यह—यह क्या कर हो लाजवंती ? पागल हो गई, क्या ?"लाला कुन्दन लाल ने रेखा को गोद में बठा लिया।

रवि ने वहुत गम्भीरता से कहा—"यह सच है। अब हमारे पास इतने पैसे नहीं हैं कि अपनी फीस दे सकें, लेकिन हतोत्साहित नहीं होंगे। मैं समाचार पत्र बेच कर यह खर्च आवश्य निकालूंगा। मम्मी भी कोई नौकरी ढूंडने की कोशिश करेंगी।"

"तुम सब बेवकूफ हो—सब नासमझ हो। यह बात मुझे कल क्यों नहीं बता दी। चलो मेरे साथ। उठाओ अपनी अपनी पुस्तकें।"

उसने रवि और रेखा की पुस्तकें स्वयं ही उठा ली। दोनों को बाहर ले आया। लाजवंती से कह गया—"मैं शाम को आऊंगा। खाना यहीं खाऊंगा।"

बाहर निकल कर रेखा को आगे बिठा लिया और रवि को पीछे कैरियर पर।

शाम को बच्चे स्कूल से लौटे तो बहुत प्रसन्न थे।

"माँ, देखो—लाला जी कितने अच्छे हैं।" रवि ने अपना और रेखा का पलास्टिक का नया बैग दिखाते हुये कहा।

रेखा ने माँ की गोद में घुसते हुये पूछा—

"मम्मी! लाला जी का घर कहाँ है?"

"उधर आलम बाग़ में।"

"वहाँ किसके पास रहते हैं?"

"अकेले रहते हैं।"

"यहाँ क्यों नहीं रहते हमारे साथ?"

लाजवंती खामोश रही—

"बताओ न मम्मी—तुम इन्हें कहती क्यों नहीं? यहां हमारे साथ रहा करें।"

"मैं कहूँगा, मैं—आज वह हमारे घर आयेंगे तो मैं इन्हें जाने नहीं दूंगा।" रवि ने चमक कर कहा।

"चुप रे।"—इस से आगे लाजवंती कुछ न कह सकी।

शाम को लाला कुन्दन लाल खाना खाने आया तो अपने साथ राशन का बहुत सा सामान उठवा कर ले आया जिसे देख कर लाजवंती घबरा गयी। बड़ी हिचकचाहट के साथ बोली—"यह आप क्या कर रहें हैं।"

"क्या कर रहा हूं!" वह हंस दिया—"तनिक देखो तो अपनी ओर इन बच्चों की ओर। क्या गत बना रक्खी है। क्या इसका नाम हिम्मत हारना नहीं होता? मैं हर महीने तीन सो रुपये पाता हूं। तमाम होटल वाले ले लेते हैं और फिर भी भूखा रहता हूँ। तुम मुझे एक वक्त ही खाना पका कर दिया करना। तुमें कष्ट तो होगा, किन्तु केवल मेरी इस इच्छा का ख्याल कर लो—में किसी न किसी बहाने बच्चों के समीप रहना चाहता हूँ। इन से मिलकर मुझे अत्याधिक प्रसन्नता होती है—संतोष मिलता है, और फिर ये होनहार तो.........।"

अधेड़ उम्र का, मलगेज बोलों वाला लाला कुन्दन लाल रवि और रेखा को अपनी टांगों से चिमटाए बड़े गम्भीर स्वर से प्रार्थना कर रहा था। लाजवंती दीवार से लगी सुन रही थी, उसका दिल डूब रहा था।

कुछ दिन और व्यतीत हो गये। लाजवती लाला कुन्दन लाल के लिये दोनों समय खाना बनाती थी। बच्चे उसके बहुत समीप आ गये थे। वे सब उसे लाला जी कह कर पुकारते थे। वे उससे अपनी आवश्यकतायों की चीजें प्राप्त करते तो वह बहुत प्रसन्न होता था, परन्तु लाजवंती को बहुत लज्जा आती थी। वह बेबस थी। कभी लाला जी की अनुपस्थिति में बच्चों को डाँटती भी थी, तो बच्चे तुनक कर उत्तर देते थे—"क्यों न मांगें। वे हमारे पापा से बहुत अच्छे हैं।"

एक दिन रवि और रेखा ने ज़िद पकड़ली—

"हम आपको जाने नहीं देंगे।"

"आप हमारे घर सोया करें।"

लाजवंती और लाला कुन्दन लाल दोनों ने सिर झुका लिया। बच्चे बार बार कहते रहे, किन्तु दोनों के पास मौनता के सिवा कोई उत्तर नहीं था।

उस दिन जब लाला कुन्दन लाल उन्हें कोई उत्तर दिये बिना चला गया, तो बहुत उदास मालूम होता था। बच्चों की ज़िद की उस पर गहरी प्रतिक्रिया हुई। लाजवंती भी इसी प्रतिक्रिया की शिकार थी। वह लाला कुन्दन लाल की मनोदशा भांप गयी थी, परन्तु वह उससे इस विषय में कोई बात करना नहीं चाहती थी। जब वह बिना कुछ कहे चला गया था तो लाजवंती को जैसे एक बहुत बड़ी कठिनाई से छुटकारा मिल गया था, परन्तु थोड़ी देर बाद फिर मानसिक उलझनों में फंस गयी। उसका जी चाहा कि रातो रात मकान बदल कर किसी दूसरी जगह चली जाये।

बच्चे सो गये थे। उसने सचमुच सामान समेटना शुरु कर दिया। उसे अब लाला कुन्दन लाल के सामने आते एक भय का अनुभव होने लगा था। जब वह नानपारा होउस छोड़ कर नाका हंडोला की इस तंग और अंधेरी कोठरी में आयी थी तो उसने अपना तमाम सामान बेच डाला था। यहां उस समय एक ट्रंक, एक बिस्तर, एक खटिया और कुछ बर्तनों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, परन्तु जब से लाला कुन्दन ने आना शुरु किया था, घर का सामान बढ़ना शुरु हो गया था। दो और मज़बूत चारपाइयाँ आ गयी थीं। तीन कुर्सियों और एक मेज की भी वृद्धि हो गयी थी। बच्चों के पढ़ने के लिये एक

बड़ा करोसीन लैम्प भी पड़ा था। इस प्रकार घर की कई दूसरी वस्तुओं को देख कर यूं लगता था जैसे लाला कुन्दन लाल का इस घर पर धीरे धीरे पूरा अधिकार होता जा रहा हो। जैसे वह स्वंय इस घर का एक सदस्य हो। एक मानसिक संघर्ष और उपेक्षा के उपरान्त भी लाज-वंती अपने हृदय से लाला जी के लिये आर्विभूत सम्मान को खत्म न कर सकी। उसका अस्तित्व उस घर में बिलकुल एक बाप जैसा था। इसमें लाला कुन्दन लाल का कोई दोष नहीं था। बच्चे पिता का वात्सल्य पाने के लिये बहुत उत्सुक और आकुल थे। वे नासमझ थे, निरीह थे—विवश थे—आश्रय चाहते थे। पिता के ममत्व और प्यार के भूखे थे। वह इन्हें क्योंकर रोकती। छोटी सी बात समझाने के लिये दुनियां भर की बातें समझाना पड़तीं, जिन्हें वह जिह्वा पर नहीं लाना चाहती थी———वह पूरा सामान न समेट सकी। रोते रोते सोचते २ अध बंधे–अध खुले सामान को छोड़ कर बच्चों के साथ जा लेटी।

दो दिन तक लाला कुन्दन लाल भी न आया। उसके न आने से बच्चे बहुत परेशान हुये। बार बार मां से उसके न आने का कारण पूछते। लाजवंती के पास इसका कोई उत्तर न था। वह स्वंय परेशान थी। ऐसा लगता था जैसे लाला कुन्दन लाल ने आकर उसकी मानसिक उलझनों को बढ़ा दिया हो। कहीं वह बीमार न पड़ गया हो? कौन आकर बतायेगा? वह उसका घर भी नहीं जानती थी! बच्चों की बातों से उसने कोई गलत अर्थ न ले लिया हो, उसने अपने विषय में कोई गलतफ़हमी न पैदा कर ली हो। लाजवंती ने अपने आप को बहुत निर्बल अनुभव किया। उसे एक ऐसी घटना का आभास होने लगा जिस से वह पहले भी ——एक बार गुज़र चुकी थी।

उसी दिन दोपहर को जब बच्चे स्कूल गये हुये थे, डयोढ़ी में लाला कुन्दन लाल के साइकिल रखने और खांसने की आवाज़ सुनाई दी। वह लपक कर सामने जा पहुँची। वह सचमुच लाला कुन्दन लाल ही था——चेहरे पर एक गम्भीर मुस्कराहट लिये, बिलकुल ऐसे जैसे वायु के झोंके बसन्त के आगमन का पता दे जायें, परन्तु लाजवंती का दिल धड़कने लगा।

"बच्चे अभी तक लौटे नहीं ?" उसने इधर उधर देखकर कुर्सी पर बैठते हुये पूछा।

लाजवंती ख़ामोश खड़ी रही। कहना चाहती थी——'क्यों बनते हो——तुमने जान बूझ कर ही तो आने के लिये ऐसा समय निकाला है——।' फिर वह पलट कर अंगीठी के पास जा बैठी, राख कुरेदने लगी। लाला कुन्दन लाल ने कहा—"मैं कछ खाऊंगा नहीं।"

"दो दिन आये नहीं।" लाजवंती ने बड़ी चेष्टा से कहा। उसने लाला कुन्दन लाल की ओर आंखें उठाईं तो उसे एक मानसिक संघर्ष में लीन पाया। अचानक बोल उठा—"लाजवंती मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।"

लाजवंती ने सिर झुका लिया। उसका जी चाहा, यूं बैठे लुप्त हो जाये—धरती में समा जाये।

उसने फिर पूछा—"क्या तुमने सुना था, उस दिन बच्चे क्या कह रहे थे ?"

लाजवंती के आंसू निकल पड़े। घुटनों में सिर दे दिया।

"क्या ऐसा नहीं हो सकता ?"

"भगवान के लिये"——वह सिसकते हुये बोली—"मैं विवाहिता हूँ——इनका बाप——।" वह आगे कुछ न कह सकी।

"वह कैसा पति है! जाने कहां है, जिसने कभी तुम लोगों की सुधि भी नहीं ली। उसने दूसरी औरत भी तो रख ली है।"

लाजवंती ने रोते रोते सिर हिला दिया।

"परन्तु सुनो तो—वह तो तुम्हें छोड़ चुका। तुम उसे अदालत के द्वारा नोटिस दे सकती हो। वह यदि रुकावट है तो उसे दूर कर दिया जायेगा। मैं चाहता हूँ......तुम और बच्चे......मैं भी तो अपना घर बनाना चाहता हूँ।"

लाजवंती उठकर कमरे से बाहर चली आई, आंचल में मुँह डाल कर रोती हुई बोली——"आप अब जाइये। मैं यह सब कुछ सुनने के लिये तैयार नहीं हूँ।"

लाला कुन्दन लाल उठ खड़ा हुआ। सिर झुका कर लज्जित—उदास—लड़खड़ाता हुआ सा, जाते जाते जेब में से कुछ रुपये निकाले और दहलीज़ पर रख कर बोला—

"आज वेतन मिला है—ये रख लो।"

"मुझे नहीं चाहिये।"

"बच्चों के लिये सही—मैं प्रण करता हूँ, फिर कभी नहीं आऊंगा! मैं क्षमा चाहता हूँ।"

वह अपनी साइकिल लेकर चला गया। लाजवंती देर तक रोती रही। आखिर वही हुआ जिसका भय था। एक परपरुष से सहायता लेने का यही परिणाम हो सकता था। एक आश्रयहीन औरत की

सहायता करके ऐसा वार्तालाप कितनी सुगमता से किया जा सकता था—परन्तु वह कब तक आश्रयहीन रहे गी ?

शाम का खाना पकाते समय वह सोचती रही। उसका पति वास्तव में ही उसे छोड़ चुका था। किसी दूसरी औरत के साथ विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहा था। लाजवंती को अपने अन्दर एक क्रान्ति के आविर्भाव का अनुभव हुआ। मनोवैज्ञनिक रूप से इस क्रान्ति के अंकुर उस समय भी उसके अंतस में वर्तमान थे जब उसने पहले पहल अपने पति के दूसरी औरतों के साथ प्रणय की सूचना सुनी थी। परन्तु इस क्रान्ति को उसने आज तक दबाया था। यद्यपि यह उसने अवचेतन अवस्था में किया था, परन्तु फिर भी वह इस क्रान्ति के महत्व से कदापि अनभिज्ञ न रही थी। इसका महत्वपूर्ण कारण यह था कि अभी तक उसके समीप कोई ऐसा व्यक्ति नहीं आया था, जो उसकी आतरिक क्रान्ति का कारण बनता। बच्चों के पालन-पोषण के ख्याल ने उसे अन्य सभी से अलग कर रक्खा था और यह सम्भव था कि वह इसी प्रकार भूली ही रहती। उसे कभी आभास भी न होता कि समाज उसके साथ एक बहुत बड़ा अन्याय कर चुका है और जिस युग में यह सब हुआ है, उस समय समाज को अदालत में घसीट कर ले जाने की सम्भावनायें वर्तमान थीं। अधेड़ उम्र के, स्वस्थ, गम्भीर और प्रेम करने वाले लाला कुन्दन लाल में क्या बुराई थी ? उसने लाजवंती के हृदय में प्रवेश करने के लिये एक दूर का रास्ता अपनाया था। पहले वह बच्चों पर दयालु हुआ था। बच्चों की चेतना पर पितृत्व का साया डालने के बाद लाजवंती को उन्हीं के मुंह से एक बाप की आवश्यकता का बार बार आभास कराया था। बाप का प्यार किसी भी व्यक्ति के बर्ताव में हो सकता है, परन्तु लाला कुन्दन लाल ने यकायक जो अपनी

नयी तसवीर लाजवंती के सामने रख दी थी, वह हृदयदाहिक का अधिक थी और उत्साहजनक कम। यदि वह सीधे रास्ते से लाजवंती के समीप अपना समूचा प्रेम और आकर्षण लेकर आया होता, तो आज लाजवती की मनोदशा सर्वथा भिन्न होती। फिर भी उसकी बातों ने लाजवंती को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।

उसने आना बंद कर दिया था। लाजवंती उसके विषय में सोचा करती थी। डयोढ़ी में साईकिल रखने की आवाज़ की इच्छुक रहती थी। प्रतिक्षण उसे ऐसे अनुभव होने लगा था जैसे एक दिन स्वयं उसे कुन्दन लाल के घर जाना पड़ेगा। बच्चों से अधिक स्वयं उसे उसकी आवश्यकता है।

बच्चे उस घटना से बहुत परेशान थे। वे इसके लिये माँ को उत्तरदायी समझते थे। कभी कभी सचमुच लाजवंती के अंदर बच्चों के साथ आंखें मिलाने का धैर्य जाता रहता था। जब्बे जब उदास हो कर उसकी ओर घूरते थे तो उसका जी चाहता था—कहीं छुप जाये, भाग जाये!

एक दिन रवि और रेखा स्कूल से लौटे तो मां को पुकारा—, "मम्मी, देखो हमारे साथ कौन है?"

"कौन है?" उसने चौंक कर देखा—

दोनों ने लाला कुन्दन लाल के बाज़ू थाम रखे थे। लाला कुन्दन लाल मुस्करा रहा था। उसकी आँखों में प्रेम था। पैंतालीस वर्ष का गम्भीर लाडा बीस पच्चीस वर्ष का शर्मीला नवयुवक मालूम हो रहा था जिसे ज़बर्दस्ती पकड़ कर प्रेमिका के सामने लाया जा रहा हो।

"मम्मी ! अब इन्हें जाने न देना।"

"मैं इन्हें बाँध कर थोड़ी रख सकती हूँ।"—लाजवंती ने मुस्करा कर कहा। उसने यह कहते हुये नाम मात्र घबराहट का भी अनुभव नहीं किया। लाला कुन्दन लाल के चेहरे पर पहले से संघर्ष की अवस्था न थी—इसके विपरीत एक उत्साह टपक रहा था।

"सुना तुमने, तुम्हारी मम्मी क्या कह रही है ? यदि इसका यह अर्थ है कि मैं न जाऊँ, तो मैं आज से यहीं रहूँगा, तुम्हारे पास। फिर कभी नहीं जाऊंगा।"

वह शाम अपार हर्ष की थी। लाजवंती ने लाला कुन्दन लाल से अदालती कारवाइयों के विषय में पूछ ताछ की। वह तमाम परिस्थितयों में से गुजरने के लिये तैयार थी। उसने नूतन भविष्य की एक सुन्दर सी तसवीर बना डाली।

इसी शाम को लाला कुन्दन लाल अपने घर जाकर अपनी पहली पत्नि के आभूषण उठा लाया और लाजवंती को सौंप दिये।

वे कमरे के मध्य में बिछी हुयी चादर पर खाने के लिये बैठे थे। तंग और अन्धेरा कमरा उनकी और बच्चों की बातों और अट्टहासों से गूँज रहा था !

इस समय अचानक एक व्यक्ति द्वार पर अपरिचतों की भांति प्रकट हुआ, जिसे देख कर गूंजते हुये अट्टहास बिजली के बलबों की भांति बुझ गये——वह लाजवंती का पति था !

लाजवंती और लाला कुन्दन लाल उठ खड़े हुये। बच्चों ने अपने पापा को पहचान कर भी ताली न बजायी। कोई प्रसन्नता प्रकट न की, बल्कि इस मङ्गल के भङ्ग हो जाने पर किसी हद तक नाराज़ थे।

लाजवंती ने अपने पति का लाला कुन्दन लाल के साथ परिचय कराने की अवश्यकता न समझी, क्योंकि दोनों एक दूसरे को जानते थे, परन्तु उसका पति बिना कुछ कहे चारपाई पर बैठ गया। लाला कुन्दन लाल ने उसकी कुशलता के विषय में उससे कुछ बातें कीं और उसके अशिष्ट बर्ताव से हतोत्साहित हो कर जाने के लिये बाहर निकल आया। लाजवंती उसे छोड़ने के लिये ड्योढ़ी तक आयी। उसने जाने से पहले कहा—"देखो लाजवंती—तुम्हारा पति फिर वापिस आ गया है, और मैं प्रसन्न हूँ। मैं समझता हूं तुम्हें अच्छी प्रकार सोचने का एक अवसर मिला है। मैं नहीं जानता, आखिर किस के साथ रहने का फैसला करोगी। यदि तुम उस के साथ रहना चाहोगी, तो मुझे कोई आपत्ति न होगी। मैं फिर अपनी दुनिया में लौट जाउंगा। मेरी दुनिया, तुम जानती हो, दिन भर साइकिल पर फाइलें लाद कर घूमना ही तो है। इतना अवश्य कहूँगा—मैं तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को तुम्हारे पति से अधिक चाहता हूँ। जाओ, अब अन्दर जाओ, उसके साथ बातचीत करो। उसके विचार जानने की कोशिश करो। मैं कल सुबह आऊंगा तुम्हारा फैसला सुनने।"

वह साइकिल पर बैठ सिर को आगे की ओर झुकाये सड़क पर गहरी शाम की भीड़ में खो गया। लाजवंती पलटी, तो बच्चों को अपने पीछे खड़ा पाया।

उन्होंने अपने बाप के पास बैठना पसन्द नहीं किया था।

उसका पति चारपाई के एक कोने में अपरिचितो की तरह बैठा हुआ था। दोनों कुछ क्षणों तक एक दूसरे को देखते रहे, घूरते रहे। कुछ देर बाद उसके पति ने कहा—"मुझे बहुत अफसोस है, मैं व्यर्थ में ही चला आया—मुझे मालूम होता तो कभी न आता।"

लाजवंती के अन्दर जैसे लावा फूट पड़ा ! चिल्ला कर बोली—"तुम्हें आने के लिये किसने कहा था ? उस औरत ने तुम्हें मेरे पास आने कैसे दिया ?"

"मैं जानता हूँ, यह तुम क्यों कह रही हो। कुन्दन लाल तुम्हारे पास रोज़ आता है——यह भी मैं सुन चुका हूँ।"

"फिर......फिर, तुम क्या चाहते हो ? मैंने कोई गल्ती नहीं की। मेरा फैसला गल्त नहीं है। बच्चों को किसी का तो साथ चाहिये।"

"मैं यह कब कहता हूँ ?"—वह उठ खड़ा हुआ, कमरे में इधर उधर टहलने लगा—एक मैली जर्जर सी पतलून में हाथ डाले। उसकी कोट की कमर पर पानी का बहुत बड़ा दाग पड़ा हुआ था। बच्चे कमरे के अन्दर नहीं आये थे। बाहर जंगले से छुपते हुये आंगन में चुप चाप खड़े थे।

उसने लाजवंती के समीप जा कर कहा—"मैं केवल यह जानना चाहता हूँ—यदि तुम्हारा वह फ़ैसला अन्तिम नहीं है और मुझे अपने दिल से पूर्ण रूप से निकाल नहीं चुकी हो तो मैं फिर इसी घर में रहूँगा। मैं अपनी गल्तियों पर बहुत लज्जित हूँ।"

यह सुनकर लाजवंती पर मौनता छा गयी। उसे विश्वास न हुआ की यह सब कुछ उसके पति ने कहा था, जिसने उसे कई बार छोड़ा था और रुलाया था और अब दो वर्ष के दीर्घकाल के बाद फिर अपने प्रेम का विश्वास दिला रहा था। उसने इसकी आँखों में झाँका जिनमें पछतावा था———प्रेम था———वही प्रेम जिस पर दो वर्ष तक अपने पास रखने के बाद भी एक अन्य स्त्री अधिकार नहीं कर सकी थी। इससे स्पष्ट था———वह प्रेम केवल उसी का था———वह उसकी फैली हुयी भुजायों में कटी पतङ्ग की भांति गिर पड़ी। उसके वक्ष के साथ

लग गयी और सिसकने लगी। उसके पति ने उसके ललाट को चूमा, उसकी आँखों, उसके अधरों, उसके मुँह पर—प्रत्येक पर चुम्बन लिये। वह सिसकियों के बीच सुनती रही—"लाज मैं कितना बुरा हूँ—बिलकुल गधा हूं—मैं......तुम जैसी देवी के योग्य कभी नहीं था......कभी नहीं।"

लाजवंती को अपना खोया हुआ प्रेम वापिस मिल गया। उसके संघर्षमय जीवन में शांति छा गयी—अपूर्व शांति छा गयी—अपूर्व शांति! उसके चारों ओर फूल खिल उठे, अपनी समूची सुगन्धियों के साथ!

वह अपनी सोचों और फैसलों और अपनी शीघ्रता पर बहुत दुःखी हुयी। उसे लाला कुन्दन लाल से इतनी जल्दी आभूषण नहीं लेने चाहिये थे। कल सुबह वह आयेगा तो वापिस कर देगी।

जब रात को पति के वक्ष पर सिर रख कर सोई, तो उसने रो रो कर उससे क्षमा मांगी। उससे प्रण किया कि वह गल्ती का पश्चाताप करेगी। हर मंगलवार को व्रत रक्खेगी! प्रतिदिन मन्दिर में जाकर भगवान के आगे लेट कर नाक रगड़े गी। अपने पति से प्रार्थना की, वह उसे तमाम बड़े पवित्र स्थानों पर ले जाये। उसके पति ने प्रण किया, वह इच्छा पूरी करेगा—वह स्वयं भी प्रयाश्चित करना चाहता था।

प्रात: वह बहुत देर से उठी। रात उसे बड़ी मीठी नींद आई थी। एक समय के बाद उसे एसी नींद मिली थी। आँख खुली तो कमरे में प्रकाश था। वह बहुत घबराई। पति के साथ लेटा देख कर बच्चे क्या कहेंगे? कहीं बच्चे सचमुच जाग न गये हों। वह उठ बैठी। बच्चे सोये हुये थे, किन्तु उसका पति बिस्तर पर नहीं

था। जाने वह कब उठ गया था—कहाँ था? इधर उधर देखती हुयी कमरे से बाहर आ गयी। वह आंगन में भी नहीं था। सामने ड्योढ़ी में दिखाइ देने वाली सड़क और उसके पार कमेटी के नल पर भी नहीं था। उसने पलट कर देखा। चारपाई के नीचे दीवार के साथ लगा हुया ट्रंक खुला पड़ा था। कपड़े बिखरे पड़े थे। लाला कुन्दन लाल के दिये हुये आभूषणों का बक्स खाली पड़ा था और उसी समय उसे ऐसा लगा जैसे ड्योढ़ी में साइकिल रखने की आवाज़ सुनाई दी हो, और किसी ने पुकार कर कहा हो :—

"मैं आ गया हूँ, बोलो, तुम्हारा फ़ैसला क्या है?"

साजन परदेशी

पहली तारीख़

युग की आवाज़

साजन परदेशी

पहली तारीख़

आज पहली तारीख़ है !

मेरी सर्द कमीज़ की ऊपरी जेब बहुत गर्म है। उसकी गर्मी से ख़ून की सर्द चाल भी कुछ गर्म-सी हो गई है। ऐसा मालूम होता है, जैसे मेरे अन्दर की मशीन आज अपनी पूरी चाल से चल रही है।

और आज मैं इसी लिए ज़रा खुश हूँ !

मेरी जेब में दस-दस के ग्यारह नोट है—ग्यारह नोट ! तीस दिनों की मेहनत की कमाई ! मेरी मां, बूढ़ा बाप, मेरे छोटे भाई-बहन सब कितने खुश होंगे।

एक सौ दस रुपये !

मेरी बूढ़ी माँ जो आज बरसों से बीमार हैं, कुछ देर के लिए भली चंगी हो जायेगी। इन एक सौ दस रुपयों को देखने से ही उसकी बीमारी भाग जाएगी। और मेरा बूढ़ा बाप जो अपनी आँखों की रोशनी खो चुका है, जब दस-दस के ग्यारह नोटों को छुएगा, तो नोटों की गर्मी से उसकी आँखों में देखने की शक्ति वापस आ जायेगी ....और मेरी स्त्री...? वह नोटों को जल्दी-जल्दी गिनकर अजीब

नज़रों से मेरे मुरझाए हुए स्वास्थ्य को नापने की कोशिश करेगी, और फिर बोलेगी—

"इन रुपयों से छः आदमियों का पेट नहीं भरता।"

वह हमेशा यही कहती है। वही घिसे-पिटे पुराने परिचित शब्द, जिन्हें सुनते-सुनते मेरे कान थक गए हैं। लेकिन वह नहीं थकती। वह एक बहुत बेवकूफ़ किस्म की औरत है। वह नहीं समझती कि परिस्थितियाँ कैसे-कैसे बदलती जा रही हैं। बेकारी का भयानक रोग किस तरह गली-गली में फैल रहा है और मंहगाई—जैसे किसी नाग की तरह फन उठाए हर दूकान और बाजार में बैठी है। लेकिन वह नहीं समझती इन बातों को—कभी-कभी एक अनोखे ढंग से लेक्चर देने लगती है। और मुझे ऐसा मालूम होता है कि कोई ज़बर्दस्ती कड़वी दवा मेरे गले में उतारता जा रहा है। उसके लेक्चर का वास्तविक उद्देश्य यही होता है कि हम सरकार से वेतन-भत्ता बढ़ाने की माँग क्यों नहीं करते। आप ही कहिए, कितने खतरनाक विचार हैं। अगर सरकार के कानों में यह बात पहुँच जायं, तो सबसे पहले मुझे नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। और फिर भूख और और फाकेकशी।

एक दिन वह कहने लगी—

"आप लोग डरपोक हैं। आपके साथी कायर हैं। आप अगर चाहें तो गर्म सूट पहन सकते हैं, डालडा की अपेक्षा शुद्ध घी के पराठे खा सकते हैं, लेकिन आप नहीं चाहते। आप में साहस नहीं, शक्ति नहीं।"

कभी-कभी इस तरह के छोटे-मोटे भाषणों को सुनकर मुझे ऐसा लगता है, कि उसने किसी अच्छी पत्रिका से कहानी या ड्रामे के

संवाद रट लिए हों और उस समय मैं उसे आश्चर्यान्वित होकर देखता रहता हूं, उसके तमतमाए हुए चेहरे को, उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखों को, उसके पतले-पतले काँपते हुए होंटों को।

और आज पहली तारीख है!

आफिस में हर व्यक्ति प्रसन्न दिखाई दे रहा है। शमीम, अख्तर, जमाल—सब बैठे चाय पी रहे हैं। हंस रहे हैं; गपशप कर रहे हैं। लेकिन इन सबसे अलग कामरेड हसन अपनी सीट पर बैठा टाइप कर रहा है। वह मौन है, बिलकुल मौन। मशीन पर उंगलियां दौड़ रही हैं। लेकिन कभी-कभी उसकी ख़ामोश और ग़मगीन निगाहें मेरी तरफ भी उठ जाती हैं।

और मैं जानता हूं कि उसकी इन दर्दभरी निगाहों में ग़म की हजारों कहानियाँ छिपी हुई है। मैं जानता हूं उसकी ग़मगीन निगाहों में एक तक़ाज़ा है, एक प्रार्थना है—मैं जानता हूं, उसकी ग़म में बुझी हुई निगाहें कहना चाहती हैं—

"प्यारे! मेरे बीस रुपये वापस कर दो। मैं भी तुम्हारी तरह ग़रीब हूं। मेरे भी माँ-बाप भाई-बहिन सब ही हैं। मेरे सिर भी तुम्हारी तरह बहुत सारे बोझ हैं। मुझे रुपयों की बेहद ज़रूरत है। खुदा के लिए अपना क़र्ज़ आज चुका दो। मैं तुम्हारा कृतिज्ञ रहूंगा। तुम बहुत अच्छे हो। तुम आज, अभी और इसी समय मेरे बीस रुपये लौटा दो।"

और एल० डी० आशिक जो एक कोने में दुबक कर बैठा हाथ में एक मोटो सी फाइल लिये हुए मुझे घूर रहा है, वह भी चुपचाप और खामोश है। उसकी खामोशी मुझसे कह रही है..."डियर, मेरा भी ध्यान रखना। मेरे दस रुपये जो तुमने आज से चार माह पहले अपनी बीमार माँ के इंजेकशन खरीदने के लिये क़र्ज़ लिये थे, मुझे अब

तक वापस नहीं किये। तुमने पिछली बार कहा था कि इस बार ज़रूर दे दोगे। मैं तुमसे न मांगता, लेकिन तुम नहीं जानते, इस बार मुसीबत आ पड़ी है। मेरे भाई को पिछले माह की चार तारीख को नौकरी से अलग कर दिया गया है। वह एक फैक्टरी में काम करता था। फेक्टरी में मज़दूरों ने वेतन-भत्ता बढ़ाने के सिलसिले में हड़ताल की थी और फैक्टरीवालों ने हड़ताल करने वालों को नौकरी से हटा दिया है। अब वह बेकार है। उसकी स्त्री है, एक अपाहिज सास है और चार बच्चे हैं। और मुझे वे बच्चे बहुत ही प्रिय हैं। मैं उन बच्चों को बहुत ही प्यार करता हूँ। उनके सूखे हुए चेहरे, मैले-मैले कपड़े और नंगे पांव मुझसे देखे नहीं जाते! उनकी भीगी-भीगी पलकें, गालों की नमी और हल्की-हल्की सिसकियां जैसे दिल की गहराइयों में उतर जाती हैं और मुझे अपने आप पर गुस्सा आने लगता है; अपने आप से घृणा हो जाती है और...लेकिन खुदा के लिये तुम मुझे भूल न जाओ... मैं तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा हूं।"

और दरवाज़े के पास रेस्तुरां का नौकर खड़ा एक आदमी से बातें कर रहा है। उसके दाएं हाथ में एक मोटी कापी है। उस कापी के २८ वें पृष्ठ पर काले अक्षरों में मेरा नाम लिखा हुआ है और बिल्कुल उसके नीचे ही कुल टोटल छ रुपये, बारह आने लिखा है।

आपको शायद नहीं मालूम कि आफिस में जब काम करते-करते मैं बिल्कुल थक जाता हूँ, जब शरीर के जोड़-जोड़ में बड़े जोरों से दर्द होने लगता है, जब कलम नहीं चलता, दिमाग बोझल सा हो जाता है। जब जी ऊब जाता है, तो मैं दो आने की एक प्याली चाय पी लेता हूं। और जब कभी दिन में ज़हर मारने के लिये रोटी नसीब नहीं होती, आंतें जलने लगती हैं और दिमाग घूमने लगता है,

तो मैं एक प्याली चाय और भी पी लेता हूं। भूख मर जाती है, दिमाग़ ठीक हो जाता है और जब कभी कोई चाय पीनेवाला मित्र आ टपकता है, तो एक प्याली और बढ़ जाती है। लेकिन मैं सच कहता हूं कि वैसे मैं केवल एक प्याली ही चाय पीता हूं। वह रेस्तुराँ का नौकर अब मेरी ओर आएगा और आकर बड़े आदर से मुझे आदाब करेगा। फिर हिसाबवाली कापी मेरी ओर बढ़ाकर धीरे से मुस्काराएगा। लेकिन जब मैं कहूँगा...

"भई, इस बार मजबूरी है, अगले महीने!"

तो उसके चेहरे से मुस्कराहट इस तरह गायब हो जायेगी, जैसे कभी थी ही नहीं। और वह बड़ी गम्भीरता से कारोबारी अन्दाज़ में जल्दी-जल्दी कहने लगेगा—

"मुझे आपसे पूरी सहानुभूति है, मैं जानता हूं आप शरीफ हैं, ईमान्दार हैं। आप कभी हिसाब में गड़बड़ नहीं करते। लेकिन मैं कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे रुपयों की बहुत जरूरत है। पिछले तीन महीने से लगातार घाटा हो रहा है। खुदा की कसम, मुझे रुपयों की बहुत सख्त जरूरत है!"

और मेरा चपरासी जो सामने दरवाज़े के बाहर उदास बैठा है, और अपने हाथ की लकीरें देखने में व्यस्त है, उसने आज सवेरे दफ्तर में पहुँचते ही पाँच रुपये क़र्ज़ माँगे। केवल पांच रुपये। उसकी स्त्री अस्पताल में बीमार है। उसने एक बच्चे को जन्म दिया है। और अस्तपताल में दवाएं हैं लेकिन चपरासी के लिये नहीं हैं। इसलिए उसे चोरबाजार से दवाइयां खरीदनी हैं। अगर मैं पांच रुपये उसे नहीं दूंगा, तो वह दवाइयां नहीं खरीद सकेगा। वह अपनी स्त्री से मिलने अस्पताल नहीं जा सकेगा। और उसका भोला बच्चा, जो

अपनी बीमार मां के बाजुओं के पास पड़ा खेल रहा होगा, उसे देख नहीं सकेगा, उसके नर्म-नर्म गालों पर प्यार का चुम्बन नहीं दे सकेगा।

और मेरी मेज़ पर कलमदान के ऊपर सिगरेट, पोस्टकार्ड और लिफाफों का एक बिल पड़ा हुआ है। आप तो जानते हैं कि मैं सिगरैट पीता हूँ और प्यारे दोस्तों से पत्र व्यवहार भी जारी रखता हूँ। पहले मैं दो पैकेट सिगरेट पी लिया करता था लेकिन अब केवल एक ही पर गुजारा कर लिया करता हूँ। और आज कल तो पत्र व्यवहार भी कम कर दिया है, लेकिन मेरी स्त्री कहती है कि मैं सिगरेट पीना बिलकुल ही छोड़ दूं और पत्र व्यवहार का सिलसिला बिलकुल समाप्त करके शायरों अदीबों को भूल जाऊं। अपने प्रियजनों और मित्रों को भूल जाऊं ? मैं सिगरेट पीता हूं, तो अपने गुजरे हुए दिनों को भूल जाता हूँ। दफ्तर की मोटी-मोटी फाइलों को भूल जाता हूँ। और छोटे साहब और बड़े साहब की धमकियां और झिड़कियां भूल जाता हूं।

और जब धुएं के बादल बनाता हूं तो मां की बीमारी भूल जाता हूँ। बाप की अंधी आंखें भूल जाता हूँ। और सब कुछ भुलाकर दुनिया से बेखबर लालटेन की मद्धिम रोशनी में कागज कलम लेकर बैठ जाता हूँ। और जो बातें मां से नहीं कह सकता, बाप को नहीं सुना सकता, और मेरे दिल के गमगीन अंधेरे कोने में जन्म लेती हैं और जो सीने से निकलना चाहते हुए भी निकल नहीं सकतीं और जिन्हें मेरी स्त्री भी नहीं सुन सकती, वह अपने दोस्तों, अपने भाइयों को सुनाता हूँ। दिल का बोझ हलका हो जाता है। मुझे प्रसन्नता होती है। मेरे दिल को थोड़ी शांति मिलती है। एक ऐसी शांति जो शराब के कड़वे घूँट में भी नहीं मिल सकती।

अगर मैं सिगरेट पीना छोड़ दूं, तो मैं अपने गुजरे हुए दिनों को

भुला न सकूंगा, छोटे साहब और बड़े साहब की झिड़कियाँ नहीं भुला सकूंगा, माँ की बीमारी और बाप की अंधी आँखों को नहीं भूल पाऊँगा।

अगर मैं अपने कलम को तोड़ कर फेंक दूँ तो मेरी आवाज़ घुट-घुट कर मर जाएगी, मेरा गीत मुर जायेगा, मेरी अनुभूति मर जाएगी और मैं शांति की तलाश में, खुशी की खोज में, जीवन के सुराग़ में, दुःख दर्द व रंजोगम की घाटियों में भटकता फिरूंगा।

और मेरी स्त्री ने, जब मैं घर से आने लगा था, कई चीजों की मांग की थी। और मैंने वादा किया था कि उसकी माँग पूरी करूंगा। उसकी पहली मांग ऊन की है। वह मां बननेवाली है और मां अपने पहले बेटे या बेटी के लिये स्वेटर और मोज़े बुनना चाहती है! दूसरी माँग चूड़ियों की और तीसरी एक अच्छी साड़ी की है। यह साड़ी की माँग अब बहुत पुरानी हो चुकी है। शायद यही कारण है कि मैं हर महीने भूल जाता हूँ। लेकिन वह नहीं भूलती, वह कभी नहीं भूलती, हर माह की पहली तारीख को मुझे याद दिला ही देती है।

आज सुबह जब मैं चाय पी रहा था, वह मेरे पास खड़ी थी। बहुत प्यार से मेरे सिर के बालों पर हाथ फेर रही थी। जब मैंने चाय की प्याली मेज़ पर रखी, वह एक लिफाफा देते हुए बोली—"यह मां का पत्र परसों आया था।"

और वह इतना ही कह सकी! इस छोटे से वाक्य में औरत के दिल की कितनी बातें छिपी हुई थीं। आज छः महीने से लगातार पत्र आ रहे थे लेकिन वह अब तक न जा सकी! उसके पास एक अच्छी सी साड़ी न थी, जिसे पहन कर वह मैके जाती।

पिछले माह उसकी एक बहुत ही मित्र सहेली ने अपनी शादी के

मौके पर उसे निमंत्रण दिया था, लेकिन वह उस मौके पर भी शामिल नहीं हो सकी। ब्याह के बाद उसकी सहेली ने ससुराल से खत लिखा था कि उसे इस बात का बहुत दुख हुआ और वह रूठ गई है। वह अब कभी न मिलेगी उससे। यह कहानी मुझे उसने नहीं बतायी थी। वह तो संयोग की बात थी कि एक दिन मैंने वह पत्र पढ़ लिया था। वह जानती थी, समझती थी, कि अगर वह मुझसे इसका जिक्र करेगी तो मुझे दुःख होगा। इसलिए वह ख़ामोश रही।

लेकिन वह आज ख़ामोश न रह सकी, शायद इसलिए कि यह मां का पत्र था। यद्यपि उसने यह नहीं कहा कि उसे एक अच्छी सी साड़ी चाहिए, लेकिन यह छोटा सा वाक्य कह रहा है कि वह मैके जाना चाहती है, वह अपने बूढ़े माँ-बाप को देखना चाहती है, वह अपने पड़ोस की सहेलियों और सगे-संबंधियों से मिलना चाहती है।

और जब मैं शाम को घर पहुंचूँगा, तो मकान मालिक का मुंशी दरवाज़े के पास किसी सूद पर रुपया देनेवाले पठान की तरह एक हाथ में छड़ी और दूसरे हाथ में किराये का बिल लिये मेरी प्रतीक्षा में बैठा मिलेगा।

और मेरी आवाज़ सुनकर मेरी स्त्री अपने चेहरे पर एक लुभावनी मुस्कराहट लिये दौड़ी-दौड़ी आएगी। दरवाजा खुद ही खुल जायेगा और जब मेरे खाली हाथों पर उसकी नज़र पड़ेगी, तो वह पहले उदास हो जायेगी और फिर मुस्करायेगी और कहेगी।

"आप भूल गये होंगे।"

और मेरी बीमार मां जो ढलते हुए सूरज की छाया पर नज़रें जमाए बिस्तर पर पड़ी है, दवा की शीशी और फलों को देखने के लिये कितनी बेचैन है, मुझे वह देखते ही मुँह फेर लेगी।

और अन्धा बाप, जो अपनी आँख के आपरेशन की आशा में मेरी प्रतीक्षा करता होगा, मुझे अपने पास बुलाकर कहेगा—

"बेटा मेरी आंखों का आपरेशन कब होगा?"

माँ बोलेगी—

"दवा और फल कब आएंगे?"

और उस समय मैं कहूँगा—

"मैं किसी के लिये कुछ भी नहीं कर सकता, जब तक मैं एक क्लर्क हूँ, जब तक मुझे एक सौ दस रुपये वेतन मिलता है; मैं कुछ भी न कर सकूंगा! किसी की इच्छा, किसी की आवश्यकता पूरी न कर सकूंगा!"

और आज पहली तारीख है। और मैं सोच रहा हूँ कि पहली तारीख फिर कब आयेगी, जब मेरे बाप की आँखों का आपरेशन होगा, जब मैं अपनी बीमार माँ के लिये दवा और फल खरीद कर लाऊंगा, और जब मेरी स्त्री नयी साड़ी पहन कर मैके जायेगी······और मैं देख रहा हूँ कि ढलती हुई रात की गोद में सवेरा अंगड़ाई ले रहा है······पहली तारीख जाग रही है······और जैसे हजारों-लाखों आवाजें इस अन्याय के सीने को चीरती हुई आ रही हैं।

"पहली तारीख आयेगी······ज़रूर आयेगी!"

जीवन सिंह

लाल हवेली

युग की आवाज़

जीवन सिंह

लाल हवेली

नेकबख्त की प्रसन्नता की आज कोई सीमा थी। उसके पुत्र सुलतान मुहम्मद ने सिंगापुर से डेढ़ हज़ार रुपया भेजा था! इस धन से नेकबख्त ने अपने स्वप्नों की लाल हवेली की नींव रखवानी थी।

नेकबख्त मर्दवाल गाँव की रहने वाली थी। वहीं उसका जन्म हुआ था, वहीं उसने यौवनावस्था में पदार्पण किया था। जब वह युवा हुई तो उससे विवाह करने की इच्छा से गांव के सफेद पोश मल्लिक मियाँ मुहम्मद ने उसके बाप को संदेश भेजा कि वह नेकबख्त को उसके घर बसा दे। नेकबख्त लाल हवेली की रानी बन जायेगी और वह सुख भोगेगी। नेकबख्त का बाप एक ग़रीब, किन्तु स्वाभिमानी किसान था। वह मियाँ मुहम्मद से मिलने तक नहीं गया। उसने संदेश भेज दिया कि वह अपनी लड़की का 'साक' मुहम्मद शाह के साथ कर चुका है और उसका निर्णय अटल है।

मुहम्मद शाह एक ग़रीब किसान का बेटा था, गांव भर में अत्यधिक सुन्दर और जवान। उसका घर मियां मुहम्मद की लाल हवेली के बिलकुल सामने था। मल्लिक मियां मुहम्मद नेकबख्त का ख्याल अपने मन से बिलकुल न निकाल सका। वह उसके अंतस में बस चुकी थी। एक दिन वह नेकबख्त को एकाँत में पाकर कहने

लगा—"नेकबख्त ! तेरा बाप तो मूर्ख है। तू अपनी ख़ूबसूरती और उमड़ती हुई जवानी को देख। तू तो रानी बनने के क़ाबिल है। आ ! मेरे दिल का सिंहासन ख़ाली है। और तेरे बिना मेरी लाल हवेली सूनी सूनी लगती है। पानी भरे तेरी गोलियाँ, यह तेरा काम नहीं।"

नेकबख्त ने यह सारी बातें बड़े शांत भाव से सुनी और तब बोली—"मियां साहब ! आपको यह बातें अच्छी नहीं लगती। ग़रीब के लिए 'कुली' और हवेली एक बराबर हैं। अगर आपने आज के बाद ऐसी बातें फिर कहीं तो फ़साद हो जायेगा।"

नेकबख्त का विवाह मुहम्मद शाह के साथ हो गया। कई वर्ष बीत गये। नेकबख्त अब दो बेटों की मां थी—बेटे भी बड़े सुन्दर और सौम्य थे। बड़े लड़के का नाम सुलतान मुहम्मद और छोटे लड़के का नाम हाकिम खान था। अभी उन्होंने स्कूल जाना शुरू ही किया था कि उनके बाप मुहम्मद शाह का देहांत हो गया। नेकबख्त पर यह एक बहुत बड़ा प्रहार था, परन्तु उसने अपने मन को दृढ़ रक्खा और लड़कों की पढ़ाई की ओर पूरा पूरा ध्यान दिया।

मुहम्मद शाह की मृत्यु के कुछ दिन बाद मलिक मियां मुहम्मद ने नेकबख्त को फिर संदेश भेजा—"अजे वी डुले बेरां दा कुझ नईं गिया। अब भी तू मेरे दिल और लाल हवेली की मालिक बन सकती है।" संदेश लानेवाले को नेकबख्त ने कहा—"मेरे सुलतान मुहम्मद और हाकिम खां ज़िन्दा रहें—मैं लाल हवेली ख़ुद ही बनवा लूंगी। मुझे तेरी लाल हवेली की ज़रूरत नहीं।"

सुलतान मुहम्मद पढ़ने में बड़ा चतुर था। अब वह मैट्रिक की परीक्षा दे चुका था। एक शाम को नेकबख्त 'दीगर' की नमाज़ पढ़

कर मुसल्ले पर बैठी दुआ कर रही थी कि गांव के स्कूल के हैडमास्टर मुन्शी महां सिंह आये और कहने लगे—"नेकबखत ! बधाई हो, तुम्हारे लड़के का वज़ीफ़ा आ गया है । सुलतान मुहम्मद बड़ी तरक्की करेगा । उसे शाहपुर के कॉलेज में भरती करवा दो ।"

"नहीं मुन्शी जी, सुलतान का मामा दोस्त महम्मद सिंगापुर से आया है । वहां नौकोरी मिल जाती है । सुना है वहाँ बैंकों के चौकीदारों को भी १५० रुपया महीना तन्खवाह मिलती है । मैं सुलतान को उसके मामा के साथ भेज रही हूं । मुन्शी जी, सुलतान मुहम्मद वहां से रुपए भेजेगा तो मैं अपनी लाल हवेली बनवाऊंगी। दोस्त मुहम्मद की छुट्टी अभी बाकी है, सो मेरी इच्छा है कि मैं सुलतान मुहम्मद का विवाह कासिम की लड़की सरदारां से कर दूं । क्यों मुन्शी जी, ठीक है न ?"

सुलतान का विवाह सरदारां के साथ हो गाया । दोनों का प्यार बढ़ता ही गाया । एक रात सुलतान सरदाराँ से कहने लगा—"तुम्हें उदास नहीं होना चाहिये, मैं तुम्हारे लिये सोने के 'कंगन' और शंघाई का कपड़ा लाऊंगा ।"

"मुझे नहीं चाहियें, सोने के कंगन और रेशम का कपड़ा । तुम मां के लिये रुपये भेजना, जिसने हवेली बनवानी है । मेरे लिए मत जाओ ।"

"असी ईथे ते ढोल साडा खूहे ।
भन सटां सोने दे चूड़े ।
रुपा मन्जूर ए......।"

"पगली कहीं की—तुम्हें मुझे रोकना नहीं चाहिये । मैं तुम्हें हर समय याद रखूंगा ।

सिदक़ यक़ीन रखीं—कदी जींदियां आ मिलसां।"

"नहीं—तुम मत जाओ, मुझे डर लगता है। छः महीने के बाद चले जाना। अपने घर में एक लाल खेलते तो देख लो। मैं यह वियोग नहीं सह सकती।

'पतासा तां घुल वैसी
फुल मैंडा माहिया......
विच थलाँ दे रुल वैंसां !"

सुलतान का मन भर आया। आँखों में आँसू आ गये, कण्ठ अश्रु रुद्ध हो गया। मुँह से कुछ भी न बोल सका। प्रात: उठते ही माँ से कहने लगा—"माँ, मैं सिंगापुर नहीं जाऊंगा।"

"चुप बेटा ! ज़िद ठीक नहीं। मुझे पता है सरदारां ने तुम्हें यह पट्टी पढ़ाई है। बेटा, तुम मुझे चार हज़ार कमा कर ला दो ताकि मैं हवेली बनवा सकूं। आख़िर उसमें तुम लोगों ने ही रहना है। मैं तुम्हारे लिये ही कष्ट उठा रही हूं। मैं अब कब तक जीवत रहूँगी—सारी उम्र तो मुझे बैठ ही नहीं रहना।"

सुलतान मामा दोस्त मुहम्मद के साथ सिंगापुर चला गया, परन्तु वह बैंक में नौकर न हुआ—बल्कि सेना में भरती हो गया। युद्ध छिड़ गया था। अंगरेज़ों और जापानियों के बीच लड़ाई शुरु होने वाली थी। उसकी तनख्वाह केवल अस्सी रुपये लगी और उसने कोड़ी कोड़ी बचा कर दो वर्ष के उपरांत पन्द्रह सौ रुपये भेजे।

नेकबख्त ने हवेली बनाने के लिये 'पैल' से दो बूढ़े मिस्त्री मँगवाये जिन्हों ने आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व मलिक मियां मुहम्मद की हवेली बनायी थी। मिस्त्री आ गये और काम शुरु हो गया। छः महीने के बाद

सुलतन ने हज़ार रुपया और भेजा। उसने सात सौ रुपया मामा दोस्त मुहम्मद से ऋण लिया था—इस प्रकार उसने अभी माँ का पन्द्रह सौ रुपया और देना था।

सुलतान के चले जाने के बाद उसके हाँ एक लड़की हुयी। उसका नाम साहब बानो रखा गया, किन्तु स्नेह से सब उसे साबो कह कर ही पुकारते थे।

साबो ने घर में अपने चाचा हाकिम के अतिरिक्त और कोई मर्द नहीं देखा था। हाकिम अब दसवीं श्रेणी में पढ़ता था और वह साबो को अपने भाई सुलतान की कहानियां सुनाया करता था—"साबो तेरा बाबा आये गा, नीले घोड़े पर चढ़ कर.........।" और सरदारां साबो से कहती..."जा बेटी—काले काग के आगे चूरी डाल, अगर खा कर उड़ गया तो समझना तेरा बाबा आने वाला है।"—और साबो घर की छत पर बैठ काले काग को देखकर कहती—

"उड़ उड़ कालेया कावां
मैं तांह चूरी पावां
दस खां, मेरा बाबा...आ?"

साबो अब तीन वर्ष की हो गयी था। वह देखती कि उसकी दादी उसरती हवेली को देखकर प्रसन्न होती थी, किन्तु इसकी मां उदास और खोयी खोयी रहती थी। उसको मां की सहेलियां हाथों पर मेंहदी लगातीं, सिर पर मेंढियां करवातीं, परन्तु उसकी मां न ही हाथों पर मेंदी लगाती और न ही सिर पर मेंढियां करवाती। उसके बाल एक काली वेणी में गुथे हुये होते। एक दिन वह मां से कहने लगी—"माँ मासी मैरां ने कल तिल्लें वाली 'गुत' (वेणी) पहनी हुयी थी और हाथों पर मेंहदी लगा रखी थी।

माँ तू क्यों नहीं लगाती ?'

साबो की बातें सुन कर सरदारां फूट पड़ी। मां को रोते देखकर साबो भी रोने लगी और मां बेटी दोनों बहुत देर तक रोती रहीं। साबो रोती रोती मां की गोद में ही सो गयी और सरदारां मन को हलका करने के लिये धीरे धीरे गाने लगी।

मैं ऐथे ते ढोल मैन्डा थल वे।
खुलियाँ लिटाँ ते पै गयीआ गल वे !!

तुधे खुलवाइयां,
जी वै ढोला।
... ...
मैं इथे तो ढोल मैन्डा जावे
रोंदी छोड़ गयों दरवाज़े।
खबर न पुछी आ, जी वे ढोला ॥

गाते गाते सरदारां का मन हलका हुआ, परन्तु उसकी नींद उचाट हो चुकी थी और दिल बेचैन हो गया था। वह बेचैनी को दूर करने के लिये हवेली की छत पर चली गई। चाँदनी रात थी, किन्तु चाँद बादलों की ओट में था। उस समय उसे वह रात याद आ गई जब उसका सुलतान उससे बिछुड़ा था। वह वियोग की पहली रात थी। उस रात भी आकाश पर इसी प्रकार बादल तैर रहे थे।

चन्न चढ़िया ते नई पया दिसना
मैंडा ढोल पई नई विसला।
गुजरे महीने.......

यह गाकर उसकी आंखें छलक आईं। उस समय उसके कानों में सुलतान का वियोग वाला गीत गूंज रहा था.....

सिदक़ यकीन रखीं......।

......और उसका सिदक (विश्वास) स्थिर था। उसका सत्य दृढ़ था; परन्तु सुलतान को सिंगापुर गये आज पूरे चार वर्ष हो चुके थे।

— — —

हाकिम मैट्रिक पास कर चुका था। मुन्शी महां सिंह ने नेकबख्त को प्रेरणा दी कि वह हाकिम को कॉलिज में पढ़ने के लिये भेजे, परन्तु नेकबख्त नहीं मानी। अभी उसकी हवेली अधूरी पड़ी थी। सुलतान और रुपये नहीं भेज सका था। अब उसे पूरा करना और उसे मल्लिक मियाँ मुहम्मद की हवेली से बड़ा बनाना उसका कर्तव्य था। उसका प्रण अटल था।

गाँव में सेना के अफसर आये और हाकिम भी सेना में भरती हो गया।

"बेटा हाकिम, बस सिर्फ एक हज़ार रुपये की जरूरत है। खुदा तुम्हें और सुलतान को जल्दी घर भेजे। हवेली बन जाने पर नाम कटवा कर घर आ जाना। अल्ला हवाले" नेकबख्त ने पुत्र को विदा करते समय कहा।

पंद्रह दिन के बाद हाकिम का पत्र इम्फाल से आया। माँ ने खुदा का शुक्र किया कि उसका बेटा अपने देश में ही था।

धन की कमी के कारण राज मजदूर काम छोड़ कर चले गये थे। हाकिम के चले जाने के बाद घर में उन लोगों की रौनक लगी रहती थी, और साथो का मन लगा रहता था परन्तु अब घर में

कोई मर्द न होने के कारण हवेली खाने को दौड़ती थी। अब साबो सारा दिन रोती रहती और चाचा हाकिम को याद करती।

लड़ाई तेज़ हो गयी। सिंगापुर पर जापानियों ने बम फेंके और वहाँ अधिकार कर लिया। सुलतान का न ही कोई कुशल समाचार मिला और न ही उसके विषय में कुछ पता चला। नेकबख्त और सरदाराँ दोनों बहुत उदास हो गयी थी। कुछ समय तक उन्हें यह आशा थी कि दोस्त मुहम्मद अवश्य कुछ न कुछ पता भेजेगा, परन्तु थोड़े दिनों के बाद दोस्त मुहम्मद गाँव लौट आया और वह सुलतान के विषय में कुछ न बता सका। बम्बारी के समय दोस्त मुहम्मद सरकारी ड्यूटी पर सिंगापुर से बाहर गया हुआ था। सो अब वह आशा भी बुझ गयी...बुझ कर राख हो गयी।

जापानी और आगे बढ़े, बर्मा को विजय किया और फिर आसाम को भी युद्ध की लपेट में ले लिया। अब नेकबख्त में हवेली के निर्माण की आकांक्षा नहीं रही थी और वह अपने बेटों के जीवन की खैर मांगने लग गयी थी। रात दिन मुसल्ले पर बैठ कर नमाज़ पढ़ती, दिये जलाती, मिन्नतें मानती। सरदारां बेचारी वसाद और विषाद पीड़ित सूख कर कांटा हो गयी। साबो अब पाँच वर्ष की हो गयी थी और अब वह सब कुछ समझने लग गयी थी। यह गीत सुन कर उसका धैर्य बढ़ जाता था।

अखी इथे ते ढोला लावे
कोई खैरी दी ख़बर ले आवे।
कुध वी पिलाम्रां—जी वे मखणा!

इस तरह कुछ और महीने बीत गये, कोई खबर न आई । अधूरी हवेली भांयें भांयें करती थी। और उस में सुलतान और हाकिम की आत्माओं, दो संतप्त विधवा ललनाओं और एक निरीह 'कंजक' के विषाद-ग्रस्त निश्वासों का वास था।

सत्य पाल 'आनन्द'

इन्सान और हैवान

युग की आवाज़

सत्य पाल 'आनन्द'

इन्सान और हैवान

धीचड़ चलते-चलते कोठी के बाग़ में रुक गया। उसे लूसी कहीं दीख न पड़ती थी। पिछले कई दिनों से वह नौकरों से छिपता-छिपाता दुम को टाँगों में दबाए लूसी से मिलने के लिए आ रहा था और लूसी थी कि न जाने कहां ग़ायब हो गई थी। वह चारों ओर देखता हुआ फिर आगे बढ़ा। हरी हरी घास पर चलते हुए उसके पावों के तलवों में एक मीठी-सी खुजली होने लगी वह पंजों को एक पेड़ के तने के साथ रगड़ने लगा और फिर थूथनी को अगले दोनों पंजों के बीच रख कर बैठ गया। भूख से उसे अपनी अतड़ियाँ बल खाती हुई प्रतीत हुईं। उसे अपनी अवस्था पर रोना आ गया। एक वह है कि आज दो दिनों से हलवाई के बासी कूँडे भी चाटने को न पा सका था और एक लूसी······न जाने उसे प्रतिदिन मुच्चे के मुच्चे गोश्त खाने को कैसे मिल जाता था। वास्तव में लूसी की मालकिन बड़ी दयावान थी। दयावान? और इस विचार के साथ ही उसे मुंह में कड़वाहट का आभास होने लगा······जैसे कहीं मिर्चों की हाँडी में मुंह जा पड़ा हो।

देखने में तो लूसी की मालकिन बड़ी दयावान ही लगती थी। किन्तु मिज़ाज? राम राम······उस के सारे शरीर में थरथरी सी दौड़ गई और गर्दन के बाल खड़े हो गए। वह तो उस दिन धीचड़ के

कुछ भाग्य ही अच्छे थे कि वह नोकरों के डंडों और पत्थरों से बच गया था नहीं तो आज वह टूटी हुई कमर लिए किसी नाली में पड़ा रेंग रहा होता। उस दिन लूसी की सुन्दर मालकिन ने उसकी जान लेने में कोई कसर न छोड़ी थी। बात केवल इतनी ही थी कि वह दोनों एक दूसरे के गले से गला मिलाए मीठी-मीठी बातें करते हुए कोठी के बरामदे में घुस गये थे। और अभी एक दूसरे को जी भर कर प्यार भी न करने पाये थे कि लूसी की मालकिन ने देख लिया। बस आग बगूला ही तो हो गई। पहले तो स्वयं साहब की छड़ उठाकर मारने लगी और जब उस से काम बनता न दीख पड़ा तो नौकरों को बुलाना आरम्भ कर दिया। खैर हुई कि लूसी ने मालकिन का मिज़ाज भाँप लिया और उसे धीरे से कह दिया कि वह चलता बने और नोकरों के आने से पहले ही वह भाग आया। यदि नौकर पीछे पड़ जाते तो जान बचाना कठिन हो जाता। उस ने भागते हुए मुड़कर लूसी के चेहरे पर निगाह डाली तो कितनी वेदना और उदासी टपकी पड़ती थी उसके चेहरे से! नीली-नीली आँखें वीरान सी हो गई थीं। लूसी उदास होकर अत्यधिक सुन्दर दीख पड़ रही थी। उसका जी तो उस समय चाहा था कि वह रुक जाये किन्तु इन्सान की दयाहीन प्रकृति का ख्याल कर वह चला ही आया......और इसीलिये तो जान हथेली पर रख कर पिछले तीन दिनों से उस से मिलने के लिए आ रहा था। उसे लूसी से कोई गिला न था, कोई शिकायत न थी। वह यह भी जानता था कि मनुष्य जाति बड़ी ही विचित्र होती है। इसीलिये जब लूसी ने उसे बताया था कि उस की सुन्दर मालकिन स्वयं रेशमी कपड़े पहने अपने नौजवान ड्राइवर को एक ही बिस्तर पर बिठा लेती है तो उसे कोई आश्चर्य न हुआ था। लूसी ने उसे यह भी बताया था कि साहब की अनुपस्थिति में उस की मालकिन और ड्राइवर घण्टों साथ साथ बैठे या लिपटे पड़े रहते हैं। इसीलिए तो उस का इतना

साहस हो गया था कि वह लूसी के साथ प्यार की बातें करता हुआ कोठी में चला जाए। यदि लूसी की नौजवान और सुन्दर मालकिन साफ़ सुथरे बिस्तर पर गंदे ड्राइवर के साथ लेटी मीठी-मीठी बातें कर सकती है, तो धींचड़ में ही कौनसा अवगुण है, कि वह लूसी के साथ स्वतन्त्रता से चल फिर न सके ? उसे न जाने क्यों ऐसा विश्वास सा हो चला था कि यह कोई पाप, कोई जुर्म नहीं है।

इस लूसी से उसकी पहली मुलाक़ात भी कुछ नाटकीय अन्दाज़ में हुई थी। आज से लगभग एक मास पहले वह यूं ही निरुद्देश्य घूमता घूमता नगर के इस सुन्दरतम भाग में आ गया था। वह इस कोठी के पास से निकल रहा था कि उसके कानों में झाड़ियों के पीछे से गुर्राने की आवाज पड़ी। आवाज़ नौजवानी, चित्ताकर्षक और लचकदार थी। उसे पहली नज़र में ही लूसी बहुत सौंदर्यशाली दिखाई दी—नानबाई के तनूर (भट्टी) से निकली हुई एक ताज़ी रोटी के समान सुन्दर और सुगंधित ! उसकी नीली आंखों में बला की चमक थी। सौंदर्य के सांचे में ढला हुआ शरीर, प्यारी-प्यारी सुन्दर कोमल खाल और लम्बी, पतली हिलती हुई दुम ! इस अल्हड़ युवती को देखकर धींचड़ को अपना दिल बहुत ज़ोर से धड़कता हुआ प्रतीत हुआ। अमेरिकन नसल की यह कुतिया भी धींचड़ को देखकर कुछ प्रभावित सी हो चली थी। मज़बूत स्वस्थ और गठीले शरीर वाला यह गन्दा कुत्ता उसे बहुत अच्छा लगा, किन्तु उसे पहली दृष्टि में यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह इतना गंदा क्यों है ? क्या इसे कभी नौकरों ने लक्स-टायलेट साबुन से मलकर नहीं नहलाया ?...वह दोनों कुछ मिनिट एक दूसरे को एकटक खड़े देखते रहे थे, और फिर लूसी ने धीरे से गुर्रा कर दुम हिलाते हुए अपनी मित्रता का सबूत दिया था। धींचड़ अभी तक सुन्दरता के प्रभाव में चुप खड़ा था। लूसी को मित्रता के रूप में गुर्राते हुए देखकर वह

उसके पास चला गया था। उसने लूसी के शरीर को सभी कोणों से सूंघ कर देखा और फिर धीरे से पूछा था—

"क्या तुम पार सगार देश के कुत्तों की राजकुमारी हो?"

लूसी हंस पड़ी थी। उसके सुन्दर दांत दीख पड़ने लगे थे......
"दोस्त मरा जन्म तो भारत में ही हुआ है किन्तु माता-पिता अमेरिकन थे—"

"फिरंगी..........हुँह...!" घीचड़ को शायद फ़िरंगियों से कुछ घृणा थी। उसे फिरंगी का वह भूतसरीखे शरीर वाला टामी याद था, जिसने बचपन में उसे मुंह में पकड़ कर पुल पर से गन्दे नाले में फेंक दिया था और मार्च करते हुए सभी फिरंगी सिपाही हंसने लगे थे।

"नहीं दोस्त...फिरंगी नहीं.....मेरे मालिक तो भारतीय हैं......" और कहते कहते लूसी का चेहरा उसकी थूथनी के पास आ गया था और उसका जी चाहा था कि वह जीभ निकाल कर उस के होठों को धीरे से चाट ले, किन्तु न जाने क्यों वह ऐसा न कर सका था।

"अन्दर चलोगे?" उसने पूछा था और वह चुपचाप लूसी के पीछे पीछे चलता हुआ कोठी के पिछवाड़े चला गया था। लूसी ने उस के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के खाने और कच्चा गोश्त लाकर रख दिया था। एक घण्टे में ही उन्होंने हज़ारो बाते कर डाली थीं। लूसी ने उसको अपनी कोठी सम्बन्धी सारी बातें, मालकिन और ड्राइवर के प्रेम, नौकरों की जीवनियाँ, उनके रहने-सहने के ढंग और अपने जीवन के बारे में सभी बातें सुनाई थीं। एक घंटे में ही वह प्रत्येक नौकर का नाम, स्वभाव प्रकृति और कर्तव्य जान गया था। उसे पता चल गया था कि

ड्राइवर की पत्नी से महमूद बटलर प्रेम करता है। और जब ड्राइवर मालकिन के साथ मज़े कर रहा होता है, तो उसकी पत्नी बाग़ के किसी एकान्त कोने में महमूद बटलर के वक्ष-स्थल पर सिर रखे उसे गाने सुना रही होती है। वह जान गया था कि बूढ़े रसोईये की जवान कंवारी लड़की अपने पिता से चोरी रात के नौ बजे कालेज के लड़कों के साथ सिनेमा देखने जाया करती है......लूसी को भी उस दिन घीचड़ के सामीप्य से एक नये आनन्द का आभास हुआ था। इस आनन्द से वह उस दिन तक बिल्कुल अनभिज्ञ थी। वह नहीं जानती थी कि उसके जीवन का लक्ष्य सिवाये मालकिन की गोद में बैठे रहने के कुछ और भी हो सकता है...!

घीचड़ को पेड़ के तने के पास बैठे-बैठे फिर अपनी नाक पर खुजली महसूस हुई। उसने अपने अगले दायें पँजे से थूथनी को सहलाया और उसे एक छींक आई। कड़वी मिर्चों की तेज़ गन्ध आ रही थी। छींक के बाद उसे फिर भूख महसूस हुई और वह उठकर बाग़ के घने भाग में धीरे-धीरे चलने लगा। वह अभी कुछ ही क़दम आगे बढ़ा था कि चलता-चलता रुक गया। उसे कहीं पास से ही लूसी की सुगन्ध आ रही थी। और जब उसने लूसी को अपनी मालकिन और ड्राइवर के साथ सामने से आते देखा तो वह उछल कर पास की एक झाड़ी के पीछे हो गया। लूसी आज असाधारण रूप से सुन्दर दिखाई देती थी। उसकी खाल का श्वेत रंग निखरा हुआ था और वह पहले से कुछ पतली दिखाई दे रही थी। मालकिन और ड्राईवर एक साथ चल रहे थे। झाड़ी के पास आकर मालकिन रुक गई और ड्राइवर से बातें करने लगी। लूसी ज़ोर-ज़ोर से मालकिन के घुटनों की ओर को उछलने लगी। घीचड़ का दिल चाहा कि वह धीरे से गुर्रा कर लूसी को अपनी उपस्थिति की सूचना दे दे। उसकी दृष्टि ड्राइवर के हाथ में पकड़ी हुई छड़ी की ओर गई और वह

कांप उठा। यदि मालकिन को उसकी उपस्थिति का पता चल जाए तो······तो······? किन्तु वह तीनों टहलते-टहलते उसके पास से निकल गए। लूसी को सम्भवत: उसकी बू आ गई थी। और इसीलिए तो वह दोदे घुमा-घुमा कर दायें-बायें देख रही थी। किंतु वह उसे न देख पाई। उनके दृष्टि से ओझल होने के पश्चात् वह झाड़ी की ओट से निकल आया। उसे बड़े पेड़ के पास कोई मृत पक्षी पड़ा दिखाई दिया। वह भागकर उधर गया किन्तु उसे गलती हुई थी। यह कोई मृत पक्षी न था बल्कि एक बड़ा सा काला कपड़ा था जो न जाने किस लिए वहाँ फेंक दिया गया था। उसने टांग उठाकर कपड़े पर पेशाब किया और कुछ मिनिट वयर्थ खड़ा रहा। फिर उसे बहुत तेज़ भूख का आभास हुआ······काश उसे कुछ खाने के लिए मिल जाए······वह यूं ही दायें-बायें देखने लगा।

"घीचड़ डार्लिंग!" उसे पीछे से आवाज़ आई। वह प्रसन्नता से काँप सा उठा। पीछे लूसी खड़ी मुस्करा रही थी और उसके दाँतों में गोश्त का एक बड़ा सा टुकड़ा था। "बड़ी मुश्किल से लाई हूं··· रसोईये को धोका देकर···" घीचड़ की बाछें खिल गईं। और उसने जल्दी-जल्दी गोश्त तोड़ना आरम्भ कर दिया। गोश्त खाने के बाद उसके शरीर में एक नई गर्मी सी आ गई और भावों की धारा में बहकर उसने अपनी खारश लगी थूथनी लूसी के होठों पर रख दी।

"सजनी!"

"हूँ·········हुँ·········मुझे डार्लिंग कहो, डार्लिंग!"

"यह डार्लिंग क्या बला होती है?" और वह उसकी गर्दन के साथ गर्दन रगड़ने लगा। लूसी को जैसे कुछ याद आ गया और वह उससे अलग हो गई, "हुँ......बड़े आये प्यार करने वाले। आते ही यह न पूछा कि मुझ पर क्या बीती।

तीन दिन बीमार रही हूँ, तीन दिन ! नमूनिया हो गया था।"

"नमूनियां ?"

"हां, तुम्हारे जाने के बाद मालकिन के कहने पर नौकरों ने मुझे पकड़ कर फिनाईल में खूब नहलाया और फल यह हुआ कि मुझे सर्दी लग गई। डाक्टर प्रभाकर कह रहे थे कि अगर इलाज न होता तो मैं मर जाती.......।"

"ईश्वर न करे" घीचड़ को इसके सिवाय और कोई वाक्य न सूझा।

"और मालकिन ने तुम्हारे जाने के बाद मुझसे दो दिन तक कोई बात न की, प्यार तक न किया, यहां तक कि मेरी बीमारी पर भी मेरे पास न आई। केवल बूढ़ा गोविन्द मेरी देख-रेख करता रहा...... ।"

"मालकिन नाराज़ क्यो है......?"

"उन्हें मेरा तुमसे मिलना-जुलना पसन्द नहीं।"

घीचड़ ने कृतृम आश्चर्य से पूछा, "क्यों ?"

"वे कहती हैं, कि तुम बहुत गंदे हो। और तुम्हें खारिश लगी हुई है, यदि मैं तुम्हारे साथ रही तो मुझे भी लग जायेगी......"

"अच्छा ?"

"हां"

"तो तुम्हारी गोरी चिट्टी मालकिन फिर क्यों सदैव ड्राईवर के साथ रहती हैं ? और ड्राईवर भी तो मैले-कुचैले कपड़े पहनता है। और उसकी गर्दन भी तो ढेरू हलवाई की कड़ाही के समान काली है।

क्या तुम्हारी मालकिन को उसकी काली गर्दन से घिन नहीं आती ?''

लूसी चुप रही। धीचड़ की बात का उसके पास कोई उत्तर न था। अतः उसने बात पलट दी।

''धीचड़ डार्लिंग'······एक बात कहूँ ?''

''दो कहो, सजनी !''

''तुम भी अगर कोठी में रहना पसन्द कर लो, तो गोविन्द तुम्हें नहला कर साफ़ कर देगा। और फिर मालकिन को भी कोई आपत्ति न होगी''

''न लूसी''

''क्यों ?''

''मुझे तुम्हारी मालकिन और उसके राक्षस सरीखे ड्राईवर से डर लगता है''

बात उचित थी और लूसी को भी धीचड़ का नौकरों द्वारा पिटना पसन्द न था अतः वह चुप रही। वे एक दूसरे के साथ चुप खड़े थे और घीचड़को ऐसा लग रहा था जैसे वह आकाश पर उड़ा जा रहा हो। उसने फिर अपनी खारश लगी थूथनी लूसी की थूथनी पर रख दी। वह जीभ निकाल उसके होंटों को चाटने लगा। लूसी भी कुछ भावुक सी हो चली थी। उसने प्यार से अपने दांत धीचड़ की सख्त चमड़ी में घुसेड़ दिये। उत्तर में धींचड़ ने उसक पूंछ को काटा......

किन्तु उसकी चीख़ निकल गई। लूसी गुर्राने लगी। दोनों की गर्दनों पर एक ज़ोर का हंटर पड़ा था। उसने घूमकर देखा। पीछे मालकिन और ड्राईवर खड़े ग़ुस्से से कांप रहे थे। मालकिन की सक्रोध आँखों से आग बरस रही थी और वह कह रही थी :—

''हामिद ! इस आवारा कुत्ते की खूब मरम्मत करो......और

तू बता लूसी की बच्ची......! अभी परसों ही तो तुझे फिनाईल से साफ़ किया था..........''

लूसी इससे अधिक अन्याय न सह सकी । चीचड़ पर हंटरों की मार पड़ रही थी और लूसी चीखती जा रही थी, ''इसे न मारो...बिचारे को न मारो...इसका क्या दोष है...तुम भी तो इस गंदे और मैले कुचैले ड्राईवर से प्यार करती हो...प्यार करना पाप नहीं है...भऊं...भऊं...भऊं...ईश्वर के लिए इसे न मारो !''

किन्तु दयाहीन इन्सान के कान बहरे थे और चीच, दुम को टांगों में दबाये दर्द के मारे भागता, चीख़ता, गिरता पड़ता चला जा रहा था ।

लेखक परिचय

लेखक परिचय

कृष्ण चन्द्र

कृष्ण चन्द्र आज का उदयीमान उपन्यास लेखक और कहानीकार है। उसकी शैली में मौलिकता है, एक ऐसा चुभने वाला तीखापन है जो पढ़ने वालों के दिल पर अमिट छाप छोड़ जाता है। भाषा का प्रवाह एक मुक्तधारा की तरह निर्दिष्ट उद्देश्य की ओर अनायास चलता है।

कृष्ण चन्द्र ने अपनी कहानियों में जीवन का सच्चा चित्र खींचा है। भावुकता के प्रवाह में वह कभी सच्चाई की सीमा से बाहर नहीं गया और दार्शनिकता में उतर कर भी वह कोरे तर्क की दलदल में नहीं फंसा।

आखिरी बस कृष्ण चन्द्र की नवीनतम कहानी है। इसमें सर्वहारा वर्ग की स्वस्थ प्रवृतियों का निदर्शन किया गया है— यह वर्ग युगों से शोषित होने पर भी नैतिक दृष्टि से कितना ऊंचा है— इसका निदर्शन करना लेखक का मुख्य उद्देश्य है। लेखक की इस वर्ग के प्रति श्रद्धा है।

दूसरी ओर सामाजिक पर्दे के पीछे छिपी हुई गन्दगी, व्यक्ति की स्वार्थलोलुपता, और घोर अनैतिकता का रहस्योद्घाटन करके कृष्ण चन्द्र आधुनिक समाज के विशृंखलित ढांचे पर कठोर प्रहार

करता है। आज प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का प्रतिद्वेषी है। ईर्षा उसका व्यवहार है······स्वार्थपूर्ति लक्ष्य! परिणामस्वरूप जीवन में घुटन······चेतना उदभ्रांत और कलान्त है। कृष्ण चन्द्र की दृष्टि बहुत पैनी है, वह इन सब के पीछे एक सामाजिक कारण देखता है, क्योंकि मनुष्य तो आज परिस्थितियों का दास बना दिया गया है। संक्षेप में कहानी जीवन के बहुत निकट है

कृष्ण चन्द्र का साहित्य संसार की सब भाषाओं में अनूदित हो चुका है। —इन दिनों वह अखिल भारतीय 'प्रगीतशील लेखक संघ' का मन्त्री है।

ग़यास अहमद गद्दी

२७-२८ वर्ष का अल्प-आयु अल्पाकार, किन्तु अनुभूति शील नवयुवक, जो झरिया जैसे शुष्क और असाहित्यक शहर में रहता है।

ग़यास की गणना उर्दू के उन गिने चुने कहानीकारों में की जाती है, जिन्होंने अपने उत्कट और सतत प्रयास से आधुनिक उर्दू साहित्य में अपना स्थान बनाया है। उसकी कहानियाँ शोषित और दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। उसे निम्न वर्ग के लोगों से प्यार है। उनके दुःख दर्द को वह अपना दुःख दर्द समझता है, इसलिये कि वह स्वयं मज़दूर हैं। मेहनत मज़दूरी करके पैसा कमाना जानता है। कभी कभी उसे पेट भर खाना तक नहीं मिलता, परन्तु इसके विपरीत भी उसकी कहानियों में एक सौन्दर्य है। उत्तम जीवन के लिये सघंर्ष करने का संदेश है—वह अत्यधिक भावुक है और इसी अल्हड़ भावुकता की उसकी कहानियों पर गहरी छाप है।

परछाइयां उसकी श्रेष्ठतम रचना हैं। उर्दू और हिन्दी साहित्य

इसे एक दीर्घ काल तक न भुला सकेंगे। यह कहानी उसके कहानी संग्रह "बहारों का ज़िक्र" में भी शामिल है।

छेदी लाल गुप्त

छेदीलाल गुप्त का जीवन एक निरतंर सघंर्ष है। जीवन के उनतीस वर्षों में उसे संकटों और सर्वथा विपरोत परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। अनाथ होने के कारण बचपन में उचित शिक्षा न मिल सकी और इसीलिए उसे बचपन में ही नौकरी करनी पड़ी ; कभी चाय की दुकान और कभी साबुन फैक्टरी आदि में। मामा के कटु व्यवहार ने उसके जीवन को और भी सघंर्षशील बना दिया और वह जीवन की विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिये निकल पड़ा। कलकत्ता के तुलसी साहित्य विद्यालय में निशुल्क शिक्षा प्राप्त की।

यहीं से साहित्यक जीवन आरम्भ हुआ। अब तक लगभग चार सौ कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

वह कला में यथार्थ का चित्रण करना पसन्द करता है, किन्तु यथार्थ में कला को खपाना नहीं चाहता। वह कला और यथार्थ अर्थात कला और जीवन, युग की आकाँक्षाओं के प्रतिपादन और सतुलन को ही कला की सफलता मानता है। दो कहानी संग्रह 'गन्दगी' और 'ओट में' प्रकाशित हो चुके हैं और इस के अतिरिक्त बंगला से अनूदित कई उपन्यास भी।

कहानी छोटी होने पर भी कितनी अच्छी हो सकती है, यह 'स्वप्न और सत्य' से स्पष्ट है। मैनेजर आदर्श वाक्य क उच्चारण करता है—

"तीसरी लड़ाई की प्रतीक्षा कीजिये। 'क्षति' की अपील पर दस्तखत किया है कि नहीं आपने?"—यह उस पूंजीवादी व्यवस्था की दशा है जो दम तोड़ते हुए भी लाखों घर बरबाद किये जा रहा है। 'स्वप्न और सत्य' आपकी कहानी है, आपके मुहल्ले की कहानी है - आपके शहर की कहानी है!

देवेन्द्र इस्सर

देवेन्द्र इस्सर को देखिये तो वह एक ही समय विद्यार्थी, प्रोफैसर, दार्शनिक और साहित्यकार दिखाई देगा, और यदि उसके व्यवहारिक जीवन और कला का निरीक्षण किया जाये तो मालूम होगा कि वह वास्तव में सब कुछ है।

देवेन्द्र ने अपना साहित्यक जीवन उर्दू में आलोचनात्मक लेखों से आरम्भ किया। फिर कहानियाँ लिखना शुरू की तो लोग चौंक उठे; तब उसने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया और अब दोनों भाषाओं में एक ही गति और एक ही ढंग से लिखता है,-एम-ए करने बाद अब वह प्रोफैसर है।

'अन्नानास का दरख्त' एक ऐसे नवयुवक पात्र के गिर्द घूमती है, जो जवान है, सुशिक्षित है। काम करना चाहता है, परन्तु उसे काम नहीं मिलता। वह समाज का एक बीमार अंग बना दिया गया है-परन्तु वह चीख़ता है, उसे काम चाहिये, रोटी चाहिये, कपड़ा चाहिये! वह साईकलों के आरमेचर चुरा चुरा कर गुज़ारा नहीं करना चाहता है, वह इस कमाई पर लानत भेजता है! परन्तु इस पर भी वह निराश नहीं होता। वह अन्नानास का दरख्त बनना चाहता है जिसकी शाखें ऊपर ही ऊपर उठ रही हैं और जड़ें नीचे ही नीचे जा रही है।

हिन्दी साहित्य को देवेन्द्र से ऐसी ही कहानियों की आशा है।

भैरव प्रसाद गुप्त

भैरव प्रसाद गुप्त एक भूतपूर्व क्रान्तिकारी है।

वह मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थक है, और इसका प्रतिपादन उसने अपने ख्याति–प्राप्त उपन्यास 'मशाल' में किया है। सामाजिक क्रान्ति के लिये मार्क्स ने एक नई चेतना को जन्म दिया है, ऐसा उसका विश्वास है।

भैरव प्रसाद गुप्त पुराना लिखने वाला है। वह हिन्दी के गिने चुने कहानीकारों में अपना विशेष स्थान रखता है। कुछ समय तक 'माया' 'मनोहर कहानियां' तथा 'मनोरमा' का सम्पादक रह चुका है। मालिकों की नीति के कारण त्याग-पत्र दे देने के बाद इन दिनों वह 'कहानी' इलाहाबाद का सम्पादक है।

वह समाजिक यथार्थवाद के चित्र अपनी कहानियों और उपन्यासों में खींचता है जो सदैव हृदयग्राही और मार्मिक होते हैं, यही उसकी कला का सफलता है। साथ ही उसकी कहानियों में नई और बेहतर ज़िदगी का आह्वान है जिसके लिए वह सघंर्ष में जुटे हुए महामानवों के कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तैयार है। वह एक स्वर्ण अभियान के लिये प्रयत्नशील है।

प्रकाशित पुस्तकों में मशाल, शोले, इन्सान, गंगा मया आदि उपन्यास हैं। मंज़िल, बिगड़े हुए दिमाग़, मुहब्बत की राहें, फ़रिशता, सितार के तार, लपटें, कहानी संग्रह हैं। मशाल का हिन्दी साहित्य में बहुत अच्छा स्थान है।

जब भूख से अन्तड़ियाँ बल खा रही हों, जब युवा पत्नी के तन ढाँकने के लिये कपड़ा न हो, जब दिन में सोलह घन्टे काम करने के बाद पेट भर खाना न मिले तो इन्सान पाप-पुण्य कुछ नहीं जानता; चाहे वह आदर्शवादी ही क्यों न हो, वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना चाहता है। घनिया की साड़ी में गुप्त ने प्रगतिवाद और आदर्शवाद के इस सघर्ष में प्रगतिवाद के पक्ष में अपना निर्णय दिया है।

प्रकाश पन्डित

प्रकाश पन्डित का नाम नया नहीं — वह बहुत समय से लिख रहा है।

प्रकाश पन्डित की कहानियां अधिकतर समाज के अस्वस्थ वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। उसने समाज के रिसते हुये नासूरों को छेड़ा है, घिनौनेपन को नग्न किया है और गन्दे समाज की उस लोलुपता से पर्दे उठाये हैं जो युगों से सड़ रही है।

ज़ीनू का कथानक कशमीर का है—देवताओं की वादी! परन्तु इस देवताओं की वादी को कुछ लोग नर्क बनाने का प्रयत्न करते हैं। ज़ीनू जैसे लड़कों की माओं बहनों को बहकाते हैं, उनका नारीत्व लूटते हैं और फिर मैदानों की झुलसती धूप में किसी तंग और अँधेरे कोठे पर ला बिठाते है।

ज़ीनू एक स्वस्थ पात्र है, वह किसी हालत में भी आर्टिस्ट को रेशमाँ के समीप नहीं ले जाना चाहता, क्योंकि रेशमाँ जवान है, उसका बाप बूढ़ा है — और बस!

प्रकाश पंडित प्रगतिशील लेखक संघ का सदस्य है। उसने उर्दू

से हिंदी में दर्जनों पुस्तकों का अनुवाद किया है । आजकल वह हिंदी, उर्दू दोनों भाषाओं को समीप लाने के लिए हिन्दी में 'उर्दू कवि' लिख रहा है—वह द्वैमासिक, 'फ़नकार' का सम्पादक भी है।

गुरुबच्चन सिंह

जमशेदपुर जैसे मशीनी शहर में भी साहित्य-सृजन हो सकता है, इस कथन का प्रमाण हिन्दी का नवयुवक कहानीकार गुरुबच्चन सिंह है। लगभग तीस वर्ष का भावुक नवयुवक गुरुबच्चन सिंह टाटा कम्पनी में ग़ुलामी अर्थात नोकरी करता है। साहित्य-रचना की ओर रुचि बचपन से ही है। जब मिडिल सकूल में पढ़ता था तब से लिखने की आदत पड़ी और अब तक हिन्दी को बहुत कुछ प्रदान किया है। वह रविन्द्र, प्रेमचन्द और गोर्की द्वारा विशेष रूप से प्रभावित हुआ है। आजकल तीन उपन्यास लिखने में व्यस्त है, और चाहता है कि उसके उपन्यासों का विश्व साहित्य में स्थान हो सो उन्हें समाप्त करने की जल्दी नहीं।

गुरुबच्चन सिंह हमेशा अपने इर्द गिर्द के वातावरण से प्रभावित होकर लिखता है। और यही कारण है कि उसकी सब रचनायें जीवन के बेहद क़रीब हैं वह अपनी रचनाओं में हवाई क़िले नहीं बनाता, वह अफ़सानवी पात्र नहीं लेता—सीधी सादी बातें करता है, और इसीलिये अपने प्रयास में सफल है।

गुरुबच्चन सिंह की यह कहानी ज़िन्दगी और मौत के बीच लटकते हुए उस इन्सान की कहानी है जिसकी ज़िन्दगी की प्रियतम वस्तु दुनिया और समाज ने लूट ली है, जो हज़ार कोशिशों के बाद भी सुखी न रह सका। उसका अपराध केवल यह था कि उसने एक सुन्दर

सुघड़ और सुशिक्षित शरणार्थी लड़की से विवाह करके उसे और उसके बच्चे को आश्रय दिया था।

बवन्डर विभाजन के बाद पैदा हुई समस्याओं पर एक सर्वोतम कहानी है।

देव दत कौशल

देव दत कौशल देखने में पूरा आर्टिस्ट है।

आप जब कभी उसे मिलेंगे, उसके बाल बिखरे पायेंगे। सरदियों में कोट पहनना भूल जायेगा तो गरमियों में गरम पैंट पहन लेगा। यह लापरवाही उसकी आदत बन चुकी है, और यही कारण है कि जब आप उसके पास होंगे तो आपको बड़ी तीव्रता से इस बात का आभास होता रहेगा कि आप एक कलाकार के साथ चल रहे हैं।

देव दत कौशल की आयु केवल चौबीस वर्ष की है। उसने इसी वर्ष हिंदी एम०ए० की परिक्षा पास की है। कहानियाँ वह १९४८ से ही लिख रहा है। वह अपनी कहानियों में भावों की तीव्रता पैदा करता है। उसकी दृष्टि गहरी है। कहानी लिखते समय वह छोटी सी बात की भी उपेक्षा नहीं करता। यही कारण है कि उसकी कहानियाँ भावुक होते हुए भी गम्भीर होती हैं।

'ताज़े फूल—बासी रोटी' उसकी कहानियों में से एक है। इस कहानी में वह इस जर्जर व्यवस्था के सभी अंगों पर प्रकाश डालता है। उसकी दृष्टि एक कलाकार की दृष्टि है जो तारों को छेड़ती है, उन्हें झनझनाती है, परन्तु तोड़ती नहीं। इस पर भी वह आशावादी है इस कहानी के मोड़ इस बात के साक्षी हैं।

हीरानंद चक्रवर्ती

क़ादियाँ के रेलवे स्टेशन पर प्रायः रेलवे की वर्दी में लिपटा हुआ एक आदमी देखा जाता है जो दुबला पतला और आवश्यकता से अधिक लम्बा है। प्रायः वह आते जाते यात्रियों को ध्यान पूर्वक देखता है। लोग समझते हैं कि वह टिकट माँग रहा है किन्तु वास्तव में वह उनके चेहरों से उनके अतीत और वर्तमान को पढ़ने की कोशिश कर रहा होता है।

यह व्यक्ति हीरानंद चक्रवर्ती है, जो वहाँ स्टेशन मास्टर है। तीस वर्ष की आयु तक हीरानंद चक्रवर्ती ने केवल पन्द्रह कहानियाँ लिखी हैं, परन्तु जो लिखी हैं वह खूब लिखी हैं। पहले वह केवल उर्दू में लिखा करता था......प्रेम और रोमाँस की कहानियाँ......प्यार और मनुहार की कहानियाँ, खुशी की कहानियाँ......जीवनोल्लास की कहानियाँ...... हल्की फुल्की...खूबसूरत ... जिन्हें पढ़ कर उन्माद का अनुभव हो, परन्तु न जाने फिर क्या हुआ कि उसने अनुभव किया की जीवन में बहुत विषमता है, यह सामाजिक व्यवस्था ठीक नहीं, यह समाज ग़लत राहों पर चल रहा है उसने कुछ कहानियाँ और लिखीं, जिन में समाज के विरूद्ध ग़म और ग़ुस्सा था, भगवान की अयोग्यता पर उन में कुठाराघात किये गये थे इसकी यह कहानियाँ बहुत अच्छी थीं। 'भगवान और मनुष्य' भी इन्हीं में से एक है।

लेकिन अभी चक्रवर्ती को आगे बढ़ना है। केवल समाज और भगवान के विरुद्ध ग़म और ग़ुस्सा ही काफ़ी नहीं, बल्कि बेहतर ज़िन्दगी के संघर्ष में उसे अपना भाग भी डालना है।

राम लाल

राम लाल एक भरे भरे शरीर का भावुक सा युवक है, जिस के चौड़े माथे के नीचे हर समय दो रहस्यमयी आँखें ऐनक के मोटे-मोटे शीशों से झांक कर राह चलते व्यक्ति के अन्दर का सब कुछ जान लेने के लिये उत्सक सी दीख पड़ती हैं। इसी कारण प्रायः वह अपने साथ बातें करने वालों की बातों की ओर ध्यान भी नहीं दे पाता और थोड़े थोड़े समय के बाद चौंक कर कहता है"...... क्या कह रहे थे आप ?" और लोग समझते हैं कि वह introvert है लेकिन इसी के कारण उसके मस्तिष्क ने सफल मनोवैज्ञानिक कहानियों को जन्म दिया है।

उसने १६४० में अपना साहित्यक जीवन आरम्भ किया था। और उसके उत्कट प्रयास और चिन्तनशील मस्तिष्क के कारण ही साहित्यक जीवन के आरम्भ के छः मास के अन्दर ही उसका पहला कहानी-संग्रह 'आईने' मार्कीट में आया और हाथों हाथ बिक गया। इस के बाद उसने स्वतन्त्र भारत को तीन अमूल्य पुस्तकें प्रदान की, जिनके ना यह हैं- 'इनकलाब आने तक, वह मुस्करायेगी' और 'जो औरत नगी है।'

'तुम्हारा फैसला क्या है ?' एक ऐसी औरत की कहानी है जो बार बार अपनी पति द्वारा परित्यक्त की जाती है, किन्तु जो फिर भी अपने विश्वासघाती पति को अपना सच्चा और पवित्र स्नेह दिखाती है। वह अतीत की सब बातें भूल कर अपने पति के वक्ष से लिपट जाती है, रोती है, पश्चाताप करती है, परन्तु तब एक प्रहार और होता है......उसका पति जो नर पिशाच है, बुरा है, नीच है, कुन्दन लाल के जवरात लेकर भाग जाता है।

तब लेखक पाठक से पूछता है,—"बोलो तुम्हारा फैसला क्या कह है ?" कहानी हमारी आज की पारिवारिक समस्याओं पर यथेष्ठ प्रकाश डालती है और युगों से शोषित नारी की तड़पती और आहत आत्मा का संवेदना को कलात्मक ढंग से पढ़ने वाले के अंतर में पैठा देती है, नारी की आत्मा को समझने का आह्वान देती है।

रामलाल की मनोवैज्ञानिक पकड़ बहुत सुन्दर है।

साजन परदेशी

साजन परदेशी उर्दू के उभरते हुए कहानीकारों में से हैं।

साजन परदेशी की ज़िन्दगी इस बात की गवाही देती है कि वह हमेशा ग़म और वेदना के बहुत नज़दीक रहा है। उसने ज़िंदगी में किसी खुशी का मुंह नहीं देखा। उसके पास एक सँवेदनशील हृदय है, इसलिए वह हमेशा दुःखी रहता है। ज़िन्दगी की छोटी सी असफलता भी उसे अधिक बड़ी दिखाई देती है — इसलिए वह हमेशा ग़मगीन, उदास और तड़पता हुआ मिलेगा।

'पहली तारीख' में वह कलर्क की ज़िन्दगी का नक़शा खींचता है जो महीना भर पहली तारीख़ के इन्तज़ार में रहता है, परन्तु जब पहली तारीख़ आती है तो मां के लिए दवाई, बाप के लिए फल, बीवी के लिए साड़ी और बच्चों की फीस तक का प्रबन्ध नहीं कर सकता। उसका सारा वेतन अनाज और मकान के किराये में ही खर्च हो जाता है। उसे कुछ दोस्तों का ऋण देना है। वह दोस्त उसे कुछ नहीं कहते परन्तु वह उनकी नज़रों को पहचानता है—वह उस चपरासी को जानता है जिसकी बीवी ने अस्पताल में एक बच्चे को जन्म दिया है। परन्तु जो अपनी बीवी को मिलने के लिए अस्पताल नहीं जा सकता

क्योंकि उसके पास अस्पताल का बिल चुकाने के लिए पैसे नहीं हैं।

साजन परदेशी कला को जीवन का प्रतिबिम्ब समझता है। वह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से आगे बढ़ता है। इसलिए वह कहानी के अन्त में कहता है, "पहली तारीख आएगी ! जरूर आएगी !!" जब वह माँ के लिए फल और दवा ला सकेगा—बाप की आँखों का आप्रेशन करवा सकेगा, उसकी बीवी एक नई साड़ी पहन कर मेके जा सकेगी।

साजन परदेशी युग की आवाज़ है।

प्रो: सन्तसिंह सेखों

पंजाबी कहानी की उत्पति और विकास पढ़ने वाले विद्यार्थी को जो पहले कुछ नाम लेने पड़ते हैं उनमें से एक सन्त सिंह सेखों का है।

प्रो: सन्त सिंह सेखों लगभग पचास की आयु का सुलझा हुआ और गम्भीर साहित्यकार है। वह मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थक है, और इसी विचारधारा के कारण उसकी ज़िन्दगी एक निरन्तर संघर्ष रही है। कुछ समय के लिए खालसा कॉलेज अमृतसर में प्रोफैसर रहा, वहां से छोड़ने के बाद राजनीति की ओर रुख किया। अंग्रेजी और पंजाबी की पत्रकारिता में एक काल तक उत्साह दिखाया, और आज कल फिर खालसा कालेज सुधार में प्रोफैसर है।

संत सिंह ने पंजाबी साहित्य को बहुत कुछ प्रदान किया है। उसने कहानी और नाटक की ओर विशेष ध्यान दिया है और वह साहित्य के इन दोनों अंगों को एक नया जीवन देने में सफल रहा है। इसके

अतिरिक्त वह एक सुकवी और सुलझा हुआ आलोचक है।

प्रकाशित पुस्तकें :—

कहानी संग्रह : समाचार
कविता संग्रह : काव्य दूत, बाबा बोहड़
नाटक और एकाँकी संग्रह : कलाकार, नारकी, नाट-सनेह, वारस, छः घर, प्रगति-पथ
उपन्यास—लहू-मिट्टी

जीवन सिंह

दीर्घकाय जीवन सिंह एक हंसमुख और विनोदप्रिय व्यक्ति है, एक नटखट किन्तु मृदुल मुस्कान हमेशा उसके होंटो में छिपी रहती है और जब कोई मिलने वाला (चाहे अपरिचित ही क्यों न हो) उसके पास आता है तो वह नटखट मुस्कान व्यक्त हो उठती है और वह मीठे परिहासों और व्यग्यों से उसका स्वागत करता है। उसके इस स्वभाव का शायद ही किसी ने बुरा मनाया हो क्योंकि उसके व्यक्तित्व में एक ऐसा आर्कषण है... एक ऐसा प्रभाव है जिसके कारण कोई भी व्यक्ति उसके इस स्वभाव का विरोध करने का साहस नहीं कर सकता। वह प्रत्येक मिलने वाले की आत्मा पर छा जाता है। उसके मन की समूची श्रद्धा पर अपना अधिकार कर लेता है...... उसको अपने व्यक्तित्व की परिधि में घेर लेता है। संक्षेप में वह अपने व्यक्तित्व द्वारा 'मानव-प्रवंचना' करता है।

उस ने एम०ए० तक शिक्षा प्राप्त की है और कॉलेज के समय में ही आधुनिक पंजाबी साहित्य के महारथी प्रोः सन्तसिंह सेखों से प्रेरणा पाकर लिखना आरम्भ कर दिया। उसने विश्व साहित्य का बहुत

गम्भीरता से अध्ययन किया है । अपनी इस लगन के कारण उसने लाहौर में एक छोटे से प्रकाशन-गृह की स्थापना की जो आज पंजाब का सब से बड़ा प्रकाशन गृह समझा जाता है । निरंतर बारह वर्ष तक अपने इस प्रकाशन गृह के कार्य में व्यस्त रहने के बावजूद भी उसके अन्तर का साहित्यकार हमेशा सजग रहा है । वह आज भी बिना किसी प्रकार की थकन का अनुभव किये साहित्य के किसी भी विषय पर घन्टों बोल सकता है । उसने बहुत कम लिखा है परन्तु जो लिखा है, परिपक्व और सुन्दर । वह प्रत्येक बात सीधे सादे शब्दों में कहता है ताकि उसकी बात साधारण से साधारण पाठक तक भी पहुँच सके । पाठक के समय का उसे विशेष ध्यान रहता है । यही कारण है कि उसकी कहानियां प्रायः छोटी होती हैं... और छोटी वस्तु प्रायः सुन्दर ही होती है । इस बात का प्रमाण इस सन्ग्रह में उसकी सन्ग्रहीत कहानी है ।

'लाल हवेली' इस सन्ग्रह की सबसे छोटी कहानी है जो युद्ध के विरुद्ध एक मूक और कलात्मक आवाज़ है ।

सत्य पाल 'आनन्द'

सत्य पाल आनन्द हाड़ मांस की ऐसी मशीन है जो दिन भर तो पुस्तकों की एक दुकान पर काम करती है और शेष समय में कहानियों, कवितायों और आलोचनात्मक लेखों का सृजन करती है ।

२२-२३ वर्ष का दुबला पतला सा युवक जो देखने में कालेज का विद्यार्थी ही लगता है लगभग पांच साल से लिख रहा है ।

वह अपनी कहानियों पर अत्यधिक परिश्रम करता है । प्रत्येक दृष्टिकोण से उन्हें संवारता है । उसका विचार है कि एक अच्छा और

सफल कहानीकार बनने के लिये 'कहानी' की 'टैकनीक' पर पूरा अधिकार होना चाहिये। 'टैकनीक' के बिना कहानी में 'कहानी' की आत्मा के दर्शन नहीं हो सकते—और यही कारण है कि उसकी कहानियों में कला-पक्ष भाव—पक्ष की अपेक्षा अधिक प्रबल होता है।

भावों की तीव्रता की उसने कभी उपेक्षा नहीं की, परन्तु कोरी भावुकता भी उसे कतई पसंद नहीं और साथ ही उसने कभी प्रचारक या दार्शनिक बनने का प्रयत्न नहीं किया जिससे पाठक ऊब जाये। जीवन का यथार्थ चित्रण कहना ही उसका उद्देश्य है। उसीके अन्तर में उसका अपना स्वर छिपा रहता है जिसको समझने में पाठक को कोई कठिनाई पेश नहीं आती।

उसका अध्ययन बहुत गहरा है। इस छोटी सी आयु में उसने बहुत कुछ पढ़ा है, लिखा है ... ग्रहण किया है। कभी कभी तो उसके नये मिलने वालों को यह संदेह होने लगता है कि वह सत्यपाल आनंद नहीं—बल्कि उसका छोटा भाई है......और उस समय वह झेंप जाता है, उसका चेहरा सुर्ख हो जाता है। वह अपने निचले होंट को काटने लगता है।

'इन्सान और हैवान' जानवरों के मनोविज्ञान पर एक सफल कहानी है जिसे पढ़कर गलियों में आवारा घूमनेवाले हज़ारों 'चीचड़' हमारी आँखों के सामने आ जाते हैं। आज के शोषक इन्सान ने अपने दरम्यान तो एक लकीर खींच रखी है और साथ ही वह चाहता है कि वह उनमुक्त पशुओं के दरम्यान में भी यही लकीर खींच दे...उन्हें भी वर्गों के बन्धन में बांध दे...भेद भाव की एक दीवार खड़ी कर दे! यह है

आज के उस शोषक मानव की शोषण प्रवृति की चरम परिणति जो अपने पालतू कुत्तों को भी अपनी सम्पति का भाग समझता है और प्रत्येक उचित एंव अनुचित तरीके से उनका भी शोषण करने से नहीं चूकता।

इन्सान और हैवान 'चीचड़' और 'लूसी' की कहानी है जिनके प्रणय के बीच आजका शोषक मानव खड़ा हुआ है।